आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर

लेखक :

प्रा० डॉ० कुशलदेव शास्त्री

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राजस्थान) पिन–३२२२३०

प्रकाशक : **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास**
ब्यानिया पाड़ा, हिण्डौन सिटी, (राज०)-३२२ २३०
दूरभाष : ०९३५२६-७०४४८,
चलभाष : ०-९४१४०-३४०७२, ०९८८७४-५२९५९

संस्करण : सन् २००८ (ऋषि दयानन्द के बलिदान का १२५वाँ वर्ष)

मूल्य : ५०.०० रुपये

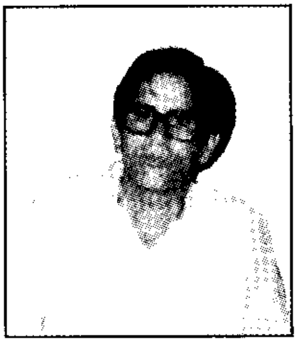
प्राप्ति-स्थान : १. **हरिकिशन ओम्प्रकाश,** ३९९ गली मन्दिरवाली, नया बाँस, दिल्ली-६ चलभाष : ०९३५०९९३४५५
२. **सुबोध पॉकेट बुक्स,** २/४२४०-ए, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-२ चलभाष : ०९८१००-०५९६३
३. **श्री राजेन्द्रकुमार,** १८, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक कालोनी, बरेली (उ०प्र०) चल० : ०९८९७८८०९३०
४. **श्री वैदिकानन्द,** श्री स्वामी दयानन्द ब्रह्मज्ञान आश्रम न्यास, वैदिक सदन, भँवरकुँआ, इन्दौर-४५२ ००१ चलभाष : ०९३०२३-६७२००
५. **श्री गणेशदास-गरिमा गोयल,** २७०४, प्रेममणि-निवास, गली पत्तेवाली, नया बाजार, दिल्ली-६ चलभाष : ०९८९९७-५९००२

शब्द-संयोजक : **आर्य लेजर** प्रिंट्स, हिण्डौन सिटी (राज०)

मुद्रक : **राधा प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली-३१

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन



मेरी उत्कट इच्छा थी कि "आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर" विषय पर कुछ लिखा जाए। मैं स्वयं तो इस विषय पर कुछ लिखूँगा ही, परन्तु मैं यह चाहता था कि प्रिय भाई कुशलदेवजी इस विषय पर अवश्य एक खोजपूर्ण पुस्तक लिखें। हर्ष का विषय है कि उन्होंने अपने व्यस्त जीवन से कुछ क्षण निकालकर यह पठनीय व संग्रह करने योग्य पुस्तक लिख दी है। आर्यसमाज के एक कर्मठ व प्रबुद्ध विद्वान् डॉ० रामकृष्ण आर्य इसे आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा के माध्यम से प्रकाशित-प्रसारित करने का यश लूट चुके हैं, और संप्रति श्री प्रभाकरदेव जी आर्य इस कीर्ति को लूट रहे हैं।

राष्ट्रीय एकता की कड़ियों को सुदृढ़ करने के लिए इस कृति का प्रकाशन अत्यन्त प्रशंसनीय है। इससे घृणा-द्वेष की दीवारें टूटेंगी और भ्रम भञ्जन भी होगा। इसकी एक-एक पंक्ति **देश-जाति** के सेवकों को पढ़नी चाहिए। डॉ० कुशलदेवजी ने जो कुछ भी लिखा है, देश व समाज के हित के लिए लिखा है। एक पीड़ा लेकर लिखा है। आर्यसमाज गुण-कर्म-स्वभावानुसार समाज के निर्माण व जन्म की जाति-पाँति के दुर्ग को ध्वस्त करने में ७५ प्रतिशत विफल रहा है, यह डॉ० कुशलदेवजी की अन्त:वेदना को ही प्रकट करता है। मैं इस पीड़ा में उनका भागीदार हूँ। मैंने भी जीवन के मूल्यवान् ५० वर्ष इस जातीय राजरोग के निवारण में लगाये हैं।

मैंने डॉ० कुशलदेवजी की एक-एक पंक्ति पढ़ी है। जात-पाँत तोड़क मण्डल के संस्थापक जीवन के अन्तिम श्वास तक आर्यसमाजी रहे। श्री सन्तरामजी आर्यसमाज के सर्वश्रेष्ठ मासिक 'आर्य मुसाफिर' के यशस्वी सम्पादक रहे। डॉ० अम्बेडकर को

जात-पाँत तोड़क सम्मेलन का अध्यक्ष बनाने में असमर्थता का कारण 'वेद निन्दा' के प्रचार में भागीदारी से बचना था। अन्यथा विरोध करनेवाले तीनों व्यक्ति जाति-पाँति के विरोधी थे। देवता स्वरूप भाई परमानन्दजी ने तो अपनी सन्तानों के विवाह जात-पाँत तोड़कर ही किये।

यह भी निवेदन कर दूँ कि डॉ० गोकुलचन्द नारंग, भाईजी के भक्त, शिष्य, मित्र व सहयोगी थे।

पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय कोल्हापुर के राजाराम स्कूल के प्रधानाध्यापक रहे। तब उस स्वल्प काल में आपने निकट से डॉ० अम्बेडकर व उनकी गतिविधियों को देखा।

महाराष्ट्र में जन-जागृति, शिक्षा-प्रसार व अस्पृश्यता निवारण के आन्दोलन में प्रि० श्री डॉ० बालकृष्णजी का भी अद्‌भुत योगदान रहा। उस आर्य मनीषी को श्री शाहू महाराज ने ही कोल्हापुर बुलाया था। डॉ० बालकृष्णजी के व्यक्तित्त्व व सेवाओं की डॉ० अम्बेडकर पर छाप पड़ी, इसको भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

पंजाब में तो बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही दलित वर्ग में अनेक संस्कार वैदिक रीति से हुए। महाराष्ट्र में यह युग बाद में आया।

देश प्रेमियों का कर्त्तव्य है कि इस पुस्तक का **अधिक-से-अधिक** प्रचार प्रसार करें। अन्त में एक बात कहना चाहूँगा कि डॉ० अम्बेडकर ने वेद व वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध जो कुछ भी कहा था, लिखा है, वह रूढ़िवादियों के घृणित व्यवहार की प्रतिक्रिया मात्र था, अन्यथा उनका वेद से कोई विरोध नहीं था। 'धम्मपद' में भी तो कोई एक भी शब्द वेद की निन्दा में नहीं मिलता।

आषाढ़-पूर्णिमा, २०५७ विक्रमाब्द — *विनीत*

(गुरु पूर्णिमा) रविवार — **राजेन्द्र 'जिज्ञासु'**

१६, जुलाई-२००० — *वेद सदन, अबोहर (पंजाब)*

दूरभाष : ०१६३४-२२६४०३ — *पिन-१५२ ११६*

द्वे-वचसि

मेरी शिक्षा-दीक्षा आर्यसमाजी शिक्षण संस्था गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) और गुरुकुल ज्वालापुर (हरिद्वार) में हुई। गुरुकुलीय विद्यार्थी जीवन में एक-दो जातियों के नाम तो सुने थे, पर जातिगत भेद-भाव और उच्च-नीचता का थोड़ा भी अहसास नहीं हुआ था। स्वयं मुझे मेरी तथा अन्य छात्रों की जातियों के बारे में भी कुछ अता-पता नहीं था, अत: अस्पृश्यता का कोई सवाल ही नहीं उठता था। हम सभी छात्र एक ही परिवार के स्नेहिल सदस्यों की तरह अपना-अपना जीवन यापन करते थे। पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने ठीक ही कहा है कि 'गुरुकुल के प्रवेश-पत्रों में जाति-बिरादरी का खाना नहीं था।' (भारतीय उत्थान और पतन की कहानी—पृष्ठ ११९)

गुरुकुल की चारदीवारी से बाहर आने के बाद जातियों का पहले परिचय हुआ, फिर धीरे-धीरे जातिगत भेद-भाव की कटुताओं का परिचय होने लगा। हमारा घर आर्यसमाजी और वह भी क्रियात्मक जीवन में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थक होने से सामाजिक सौहार्द का पक्षधर रहा। गाँव में पिताजी '**एक गाँव-एक पनघट**' तथा '**मन्दिर-प्रवेश**' जैसे उपक्रमों द्वारा सतत समता-बन्धुता का वातावरण बनाने के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। इस कारण गुरुकुल और घर दोनों से ही मानवतावादी संस्कार प्राप्त हुए।

गुरुकुल के विषय में अपनी टिप्पणी अंकित करते हुए श्री पं० उदयवीरजी 'विराज' (जन्म-१९२१) लिखते हैं—"मेरे विचार से गुरुकुल शिक्षा पद्धति आदर्श शिक्षा पद्धति है। जब कहीं दलितोद्धार नहीं था, तब गुरुकुल में दलितोद्धार था, जब कहीं समाजवाद नहीं था, तब गुरुकुल में समाजवाद था। जब कहीं हिन्दी में पढ़ाई नहीं होती थी, तब गुरुकुल में सब विषय हिन्दी में पढ़ाये जाते थे। महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने युवकों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर उन्हें आदर्श नागरिक, आदर्श मनुष्य बनाना चाहा था।" (निजामशाही पर पहली चोट—पृष्ठ ४१) डॉ० अम्बेडकरजी ने तो स्वामी श्रद्धानन्दजी को "दलितोद्धार के क्षेत्र का चैम्पियन ही कहा है।"

उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) माननीय डॉ० अम्बेडकरजी के समाज-सुधार विषयक रचनात्मक कार्यों से सुपरिचित थे, अतः उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित 'हंस' मासिक के अगस्त-१९३३ के मुखपृष्ठ पर डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर का चित्र छापा था। अप्रैल-१९३६ में लाहौर आर्यसमाज की जुबली के अवसर पर "आर्य भाषा सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते प्रसंगवशात् प्रेमचन्दजी ने आर्यसमाज पर टिप्पणी करते हुए कहा था—"

"मैं तो आर्यसमाज को जितनी धार्मिक संस्था मानता हूँ, उतनी ही तहजीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी समझता हूँ। उसके तहजीबी कारनामे उसके धार्मिक कारनामों से ज्यादा प्रसिद्ध और रोशन हैं। दलितों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा। वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर पर है। जातिगत भेदभाव और खान-पान में छूत-छात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। उसके उपदेशकों ने वेदों और वेदांगों के गहन विषय को जन-साधारण की सम्पत्ति बना दिया, जिन पर विद्वानों और आचार्यों के कई-कई लीवरवाले ताले लगे हुए थे।"

निस्सन्देह आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर आदि की प्रेरणा से प्रचलित आन्दोलन मूलतः समाज-सुधार के चक्र को गतिशील बनानेवाले आन्दोलन रहें हैं। आज भी समाज में जहाँ-कहीं भी जातिगत भेदभाव के आधार पर नफरत की काली घटाएँ फैलती हैं, उन्हें छिन्न-भिन्न करने के लिए डॉ० अम्बेडकर और ऋषि दयानन्द के अनुयायियों को अग्रिम पंक्ति में नजर आना चाहिए और वैसे वे इस दिशा में आगे बढ़ते हुए नजर आते भी हैं। पर यहाँ कार्य करते समय हमारी भाषा और क्रिया ऐसी संयमित हो कि उसमें अनुदारता और उग्रता न झलके। हमें सतर्कता बरतना इसलिए भी जरूरी है कि कहीं बिहार प्रान्त की तरह अन्यत्र भी वर्ण द्वेष, वर्ग द्वेष में परिवर्तित न हो। पूरी सावधानी के साथ हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि सामाजिक विषमता सामाजिक घृणा में बदलने की अपेक्षा समता-बन्धुता में रूपान्तरित हो जाए। इन्सान और इन्सान के बीच में जातिगत-भेदभाव के कारण जो खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, उसे पाटना ही हम सबका प्रयोजन होना चाहिए। इस लेख का भी यही मुख्य प्रयोजन है। इस विषय पर सर्वप्रथम आलेख 'आर्य लेखक परिषद' के उदयपुर (राजस्थान) अधिवेशन में पढ़ा गया था। यह उसी का संवर्धित रूप है, जो श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास के संस्थापक, यशस्वी प्रकाशक श्री प्रभाकरदेव जी आर्य के पुनीत प्रयास से हिण्डौन सिटी (राजस्थान) की ओर से प्रकाशित हो रहा है। आर्यसमाज के ख्याति प्राप्त शोध लेखक और इतिहासज्ञ प्रा० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' ने पुस्तक का प्राक्कथन लिखकर पुस्तक का गौरव बढ़ा दिया है, तदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद!

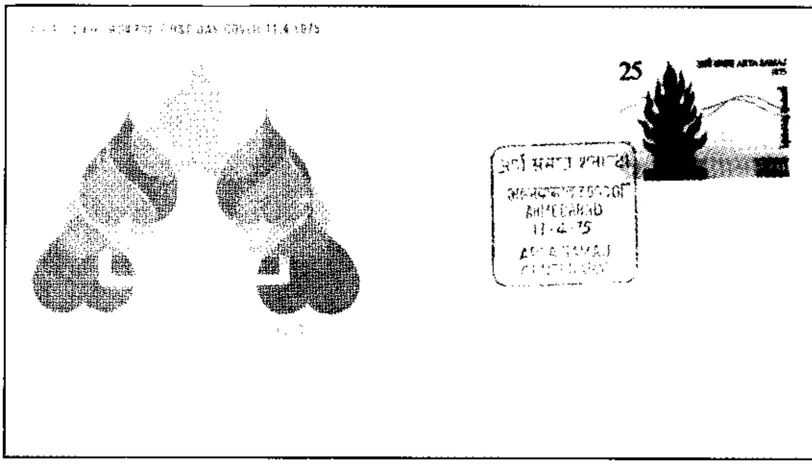
—कुशलदेव शास्त्री

रामानन्द नगर, पावड़े वाडी नाके के पास,

नान्देड़ (महाराष्ट्र)-४३१ ६०२

दूरभाष : ०२४६२-२५०९२३

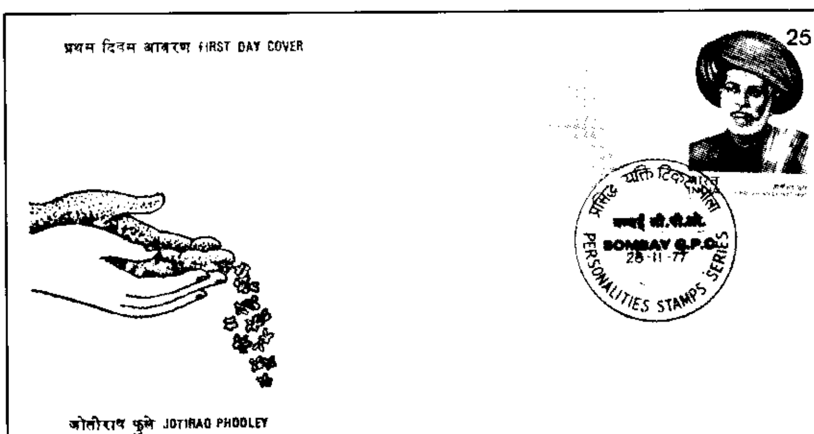
आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर



आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८२४ में और बलिदान १८८३ में हुआ। आर्यसमाज की स्थापना के १६ वर्ष बाद और स्वामी दयानन्द के देहावसान के लगभग ८ वर्ष बाद १४, अप्रैल-१८९१ को भारतरत्न डॉ० भीमराव अम्बेडकर का महू (मध्यप्रदेश) में जन्म हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि माननीय डॉ० अम्बेडकर के काल में स्वामी दयानन्द शरीररूप में विद्यमान नहीं थे, पर आर्यसामाजिक आन्दोलन के रूप में उनका यश:शरीर तो जरूर विद्यमान था। डॉ० भीमराव अम्बेडकरजी की ग्रन्थ सम्पदा इस बात की साक्षी है कि वे स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज तथा उनके अनुयायियों की गतिविधियों से अच्छी तरह परिचित थे। प्रस्तुत काल में आर्यसमाज का आन्दोलन अपने पूरे यौवन पर था, जिसका प्रभाव डॉ० अम्बेडकर और उनके युग पर निश्चित रूप से पड़ा है। इस लेखक का उद्देश्य डॉ० अम्बेडकर और आर्यसमाज के इतरेतराश्रय सम्बन्ध को यथोपलब्ध जानकारी के आधार पर प्रस्तुत करना है।

जैसे स्वामी दयानन्द गुजराती होते हुए भी मूलत: औदीच्य तिवारी ब्राह्मण माने जाते थे। वैसे ही डॉ० अम्बेडकर भी मध्यप्रदेश में जन्म लेने के बावजूद मूलत: तथाकथित शूद्र (महार) कुलोत्पन्न महाराष्ट्रीय के रूप में सुप्रसिद्ध थे। कालान्तर में दोनों भी राष्ट्रीय

ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय महापुरुष के रूप में भी सुप्रसिद्ध हुए। जिस समय महाराष्ट्र में (तत्कालीन मुम्बई राज्य में) 'रानाडे-फुले युग' का अस्त हो रहा था, उसी समय वहाँ श्री सयाजीराव गायकवाड़, राजर्षि शाहू महाराज तथा डॉ० अम्बेडकर के युग का उदय हो रहा था। यह दूसरी पीढ़ी भी अपनी पूर्ववर्ती दयानन्द—रानाडे—फुले आदि महापुरुषों की कार्यप्रणाली से प्रभावित और प्रेरित रही है। श्री सयाजीराव गायकवाड़ और राजर्षि शाहू महाराज स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित 'आर्यसमाज' से अधिक प्रभावित थे, तो डॉ० अम्बेडकर महात्मा फुले और उनके द्वारा स्थापित 'सत्य शोधक समाज' से। श्री सयाजीराव गायकवाड़ और राजर्षि शाहू महाराज आर्यसमाजी होते हुए भी सत्य शोधक समाज के भी सहयोगी और प्रशंसक रहे, तथा डॉ० अम्बेडकर महात्मा फुले के शिष्य होते हुए भी स्वामी दयानन्द और उनके आर्यसमाजी आन्दोलन के प्रशंसक होने के साथ-साथ समालोचक भी हैं, पर उन्हें आर्यनरेश द्वय श्री गायकवाड़ और राजर्षि शाहू की तरह आर्यसमाज आन्दोलन के सहयोगियों में नहीं खड़ा किया जा सकता। हाँ! आर्यसमाजी आन्दोलन के डॉ० अम्बेडकर हमेशा से ही हितैषी रहे हैं।



उनके लिए स्वामी दयानन्द की तुलना में महात्मा फुले अधिक आराध्य रहे। डॉ० अम्बेडकर ने गौतम बुद्ध, सन्त कबीर और महात्मा फुले की महापुरुष त्रयी को अपना गुरु माना है।

संस्कृत व राष्ट्रभाषा हिन्दी की तरह प्रान्तीय स्तर पर मराठी में काम--काज न कर पाने के कारण महाराष्ट्र में आर्यसमाज का आन्दोलन उतना प्रभावी ढंग से न चल सका, जितना कि उत्तर भारत में। राजर्षि शाहू महाराज के अनुसार 'ब्राह्मण- नौकरशाही' के कारण महाराष्ट्र में आर्यसमाज का आन्दोलन प्रभावी नहीं हो सका।

बडौदा नरेश द्वारा मेधावी डॉ० अम्बेडकर की शिक्षा



श्री डॉ० भीमराव अम्बेडकर को इण्टर पास करने के बाद बी० ए०, एम० ए०, पी एच० डी०, डी० एस० सी० (लन्दन), एल० एल० डी, बार-एट-लॉ, जैसी उपाधियों से विभूषित और प्रकाण्ड पण्डित बनाने में आर्यसमाजी आन्दोलन का, प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप में क्यों न हो, अविस्मरणीय योगदान रहा है। इस बात को और कोई जाने या न जाने स्वयं डॉ० अम्बेडकर जरूर जानते थे। इसलिए भी उनके ग्रन्थों में आर्यसमाजी आन्दोलन के प्रति विशेष सहानुभूति नजर आती है।

जहाँ आर्यनरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ ने सन् १९१२ से १९१५ तक डॉ० भीमरावजी अम्बेडकर को उच्च विद्याविभूषित करने के लिए शिष्यवृत्तियाँ प्रदान कीं और उन्हें अमेरिका भेजा, वहाँ अपने--आपको हृदय से आर्यसमाजी कहलानेवाले राजर्षि शाहू

महाराज ने भी सन् १९१९ से १९२२ तक अम्बेडकरजी को विदेश जाकर अध्ययन करने के लिए आर्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण सहयोग दिया था।

कोल्हापुर नरेश का सक्रिय सहयोग



आर्यनरेश राजर्षि शाहू महाराज ने पत्रकार डॉ० अम्बेडकर के प्रथम पत्र 'मूकनायक' के संचालन में भी आर्थिक सहायता प्रदान की थी और इतना ही नहीं सन् १९२० में माणगाँव में सम्पन्न प्रथम अस्पृश्यता परिषद में कोल्हापुर के आर्य नरेश शाहू महाराज ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि 'डॉ० अम्बेडकर भारतवर्ष के अखिल भारतीय नेता होंगे।' तत्कालीन मुम्बई राज्य के इन दोनों राजाओं के पास जो यह उदारमन और उदारदृष्टि थी, उसकी पृष्ठभूमि में मुझे स्वामी दयानन्द खड़े हुए नजर आते हैं। इन दोनों ही आर्यनरेशों के अन्त:करण पर निर्विवाद रूप से आर्यसमाजी आन्दोलन की विशिष्ट छाप रही है।

मूकनायक अंक

परळ–मुम्बई

१३ । ६ । २०

श्रीमन् महाराज शाहू छत्रपति, करवीर

महोदय की सेवा में

माणगांव और नागपुर की सभा में पारित प्रस्ताव के अनुसार दि० २६ जून के दिन सर्वत्र आपका जन्म दिवस समारोह आयोजित किया गया है। उसी दिन आपके आश्रय से निकल रहे 'मूकनायक' का विशेषांक [भी] निकालने का निश्चय हुआ है। उसमें श्रीमन् महाराज की सचित्र क्रियाशील जीवन की उज्ज्वल समग्र रूपरेखा दी जाएगी। इसलिए आपके कार्यकाल की आज तक की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए मैंने एक बार आपसे विनति की थी, पर खेद महसूस होता है कि आज तक भी वह जानकारी प्राप्त [नहीं] हुई है। दिन बहुत ही कम बाकी हैं, अत: मैंने स्वयं आकर आवश्यक जानकारी एकत्रित करने का निश्चय किया है। इसी उद्देश्य से मैं आज सांध्यवेला में पहुँचूंगा। [आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि] श्रीमन् महोदय के दर्शन का लाभ होगा ही।

आपका कृपाभिलाषी

भीमराव आंबेडकर

माननीय अम्बेडकर जी द्वारा हस्तलिखित मराठी भाषा में लिखे ऐतिहासिक पत्र का हिन्दी अनुवाद। यह पत्र कोल्हापुर के छत्रपति शाहू महाराज को लिखा गया है।

सन्दर्भ:—'पत्रांच्या अंतरंगातून डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर' नामक मराठी ग्रन्थ के मुखपृष्ठ से यह हस्तलिखित मराठी पत्र उद्धृत किया गया है। लेखिका सौ० चंद्रकला रघुनाथ उकरंडे, प्रकाशक—श्री समर्थ प्रकाशन, ४७३ दत्तवाडी, पुलिस चौकी के पीछे, पुणे–४११०३०। मूल्य–१००.००। पृष्ठ संख्या–१४४।

आर्यसमाज की प्रगतिशील दृष्टि

बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ (१८६३-१९३९) और कोल्हापुर नरेश राजर्षि शाहू (१८७४-१९२२) का स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होने का महत्त्वपूर्ण कारण है— आर्यसमाज की वेद विषयक प्रगतिशील दृष्टि। इन क्षत्रिय राजाओं को तत्कालीन रूढ़िवादी पण्डित शूद्र समझते थे और इसी कारण इन्हें वेदोक्त संस्कार का अधिकार प्रदान करने के लिए तैयार न थे, जबकि स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद पढ़ने का अधिकार मानवमात्र को था। महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी का यज्ञोपवीत संस्कार करने में हिचकिचाहट करनेवाले रूढ़िवादी पण्डितों की परम्परागत संकीर्णता २०वीं सदी में भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी, जबकि स्वामी दयानन्द ने वेद के आधार पर ही यह सिद्ध किया था कि मानवमात्र के साथ समस्त स्त्री-शूद्रों को भी वेदाध्ययन करने का अधिकार है। रूढ़िवादी पण्डितों की इस संकीर्णता से बेचैन होकर श्री सयाजीराव गायकवाड़ और शाहू महाराज आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए। इन आर्यनरेशों ने केवलमात्र डॉ० भीमराव अम्बेडकर को ही नहीं, अपितु अन्य प्रतिभावान् दलितों को भी छात्रवृत्तियाँ प्रदान की थीं।

अम्बेडकरजी द्वारा नमस्ते अभिवादन का प्रयोग

महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने अपने प्रारम्भिक काल से ही अभिवादन के रूप में प्राचीन, शास्त्रीय, सार्वजनीन नमस्ते का उद्धार और प्रचार किया है। अमर शहीद पं० रामप्रसाद बिस्मिल के अनुसार "जब आर्यसमाज का यह प्रयत्न कुछ लोगों को ऊँच-नीच का भेदभाव नष्ट करनेवाला प्रतीत हुआ, तो उन्हें यह सहन नहीं हुआ कि निम्न वर्ण के लोग उच्चवर्णियों की तरह नमस्ते करें। इसलिए इन संकीर्ण रूढ़िवादियों ने '**गरीब निवाज**', '**पालागन**', '**जुहार**' आदि को बलपूर्वक प्रचलित रखना चाहा।"[१] डॉ० अम्बेडकरजी ने भी इस बात पर खेद प्रकट किया है कि 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के काल में 'महाराष्ट्र की निम्न जातियों द्वारा' ऊँची जाति के बराबर आने के प्रयत्न उन्नत जातियों द्वारा नष्ट कर दिये गये। सुनारों ने जब उच्च कुलोत्पन्न व्यक्तियों

की तरह नमस्कार करना चाहा, तो उन्होंने कम्पनी की ओर से उनके नमस्कार पर पाबंदी के आदेश निकलवा दिये थे।[2] आर्यनरेशों और पं० आत्मारामजी अमृतसरी जैसे आर्यसमाजियों के सम्पर्क में आकर श्री भीमरावजी अम्बेडकर ने 'जोहार' के स्थान पर 'नमस्ते' अभिवादन को स्वीकार तो कर लिया था, पर न जाने बाद में ऐसी कौन–सी परिस्थितियाँ पैदा हुईं, जिस कारण उन्होंने फिर से 'नमस्ते' के स्थान पर 'जोहार' अभिवादन को स्वीकार किया। डॉ० अम्बेडकरजी के व्यक्तित्व और कृतित्त्व के विद्वान् समीक्षक डॉ० गंगाधर पानतावणेजी के कथनानुसार तो डॉ० अम्बेडकरजी ने अपने जीवन के अन्त में आधुनिक बौद्धों में प्रचलित '**जय भीम**' अभिवादन भी अपना लिया था। जबकि इस अभिवादन का '**भीम**' शब्द डॉ० भीमराव अम्बेडकरजी के नाम का ही मूल अंश है। प्रत्येक बौद्ध '**जय भीम**' कहते वक्त एक प्रकार से डॉ० अम्बेडकर के विचारों के विजयी होने की मनोभावना को ही व्यक्त करता है।

माननीय अम्बेडकर जी द्वारा 'नमस्ते' अभिवादन अपना लेने की पुष्टि उनके ही द्वारा लन्दन से भेजे गये तीन पत्रों से होती है। पहले दो पत्र उन्होंने अपने घनिष्ठ सहयोगी और सचिव श्री सीताराम नामदेव शिवतरकर को भेजे हैं, और तीसरा पत्र श्री अम्बेडकरजी ने अपनी सहधर्मिणी रमाबाई को लिखा है। डॉ० अम्बेडकरजी की अभिवादन शैली के कुछ एक नमूने काल क्रमानुसार इस प्रकार हैं—



६. अक्टूबर १९२०, प्रिय शिवतरकर, नमस्ते, १० जून-१९२१—राजमान्य राज्यश्री शिवतरकर यांस नमस्ते/२५, **नवम्बर-१९२१ प्रिय रामू (श्रीमती रमाबाई भीमराव अम्बेडकर) नमस्ते**/१२, जून-१९२७, रा० रा० मुकुंदराव पाटिल यांस अनेक जोहार।[3]

डॉ० बाबासाहब अम्बेडकरजी के सहयोगी श्री सीताराम नामदेव शिवतरकर सन् १९३३ से १९३६ की कालावधि में

आर्यसमाज लोअर परल, मुम्बई के प्रधान थे और डॉ० अम्बेडकरजी भी इस आर्यसमाज में पधारे थे। प्राप्त जानकारी के अनुसार मुम्बई के लोअर परल आर्यसमाज और उनके पदाधिकारियों के साथ माननीय डॉ० अम्बेडकरजी के स्नेहिल सम्बन्ध थे। (आर्यसमाज लोअर परल सुवर्ण महोत्सव स्मरणिका [मराठी] सन् १९७७)।

डॉ० अम्बेडकर का वैदिक संस्कारों की ओर झुकाव

स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की वेदनिष्ठा तो जाहिर है। आर्यसमाज का तीसरा नियम है—'**वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।**' आर्यसमाजों में समस्त संस्कार वैदिक पद्धति से ही सम्पन्न होते हैं। कुछ अन्य भी 'सनातन' संगठन है, जो वैदिक संस्कारों के प्रति अनन्य आस्था अभिव्यक्त करते हैं।

माननीय डॉ० अम्बेडकर के 'बहिष्कृत भारत' नामक साप्ताहिक मराठी समाचार पत्र के १२, अप्रैल-१९२९ के अंक में पृष्ठ सात पर यह संक्षिप्त समाचार प्रकाशित हुआ था—'**समाज-समता-संघ का नया उपक्रम।' महार समाज में वैदिक विवाह पद्धति सुदृढ़ की जाएगी**—स्मरण रहे इसी महार कुल में डॉ० अम्बेडकर का जन्म हुआ था।

उपरोक्त चर्चित अंक के ही पृष्ठ ८ पर, एक सम्पन्न वैदिक विवाह संस्कार की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया गया था कि—



''यह विवाह हिन्दू मिशनरी सोसाइटी के संस्थापक श्री गजानन भास्कर वैद्य (१८५६-१९२१) की संकलित वैदिक पद्धति से सम्पन्न किया गया। उक्त समाचार के अन्त में यह शुभकामना की गई है कि अस्पृश्य समाज वैदिक पद्धति का प्रचलन कर उन पर लगाये गये अस्पृश्यता के कलंक को नष्ट करने में समर्थ हो।''



'समाज समता संघ' के अध्यक्ष डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में लगाये गये पहले वैदिक विवाह का ऐतिहासिक चित्र। नवदम्पति के पीछे डॉ० अम्बेडकर खड़े हुए दिखलाई दे रहे हैं। यह चित्र महाराष्ट्र शासन द्वारा प्रकाशित 'लोक-राज्य' मराठी मासिक दिसम्बर २००२ पृष्ठ २७ से उद्धृत किया गया है।

यह जानकर आश्चर्य होता है कि २९ जून, १९२९ को वैदिक पद्धति से सम्पन्न श्री केशव गोविन्दराव आड़रेकर के विवाह में डॉ० अम्बेडकरजी अपनी सहधर्मिणी के साथ उपस्थित थे। यह विवाह 'समाज-समता-संघ' के तत्त्वाधान में तथा आचार्य-पुरोहित श्री सुन्दररावजी वैद्य की देख-रेख में सम्पन्न हुआ था। वर-वधू के माता-पिता रूढ़िवादी होते हुए भी माननीय डॉ० अम्बेडकर के सुधार सम्बन्धी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही वैदिक पद्धति से विवाह करवाने के लिए तैयार हुए थे। यह विवाह परल (मुम्बई) स्थित दामोदर मूलजी ठाकरसी हॉल में सम्पन्न हुआ था। श्री सुरवाडे के अनुसार 'दलित समाज में वैदिक पद्धति से सम्पन्न यह पहला विवाह था।' अम्बेडकर-दम्पति के अतिरिक्त इस विवाह में श्री रा० ब० बोले, डॉ० सोलंकी, श्री कमलाकर चित्रे आदि गणमान्य सज्जन समुपस्थित थे।

डॉ० अम्बेडकरजी के ६, सितम्बर-१९२९ के 'बहिष्कृत भारत' में यह समाचार भी प्रकाशित हुआ था कि 'मनमाड़ के महारों (दलितों) ने श्रावणी मनायी।' २६ व्यक्तियों ने यज्ञोपवीत धारण किये। यह समारोह मनमाड़ रेल्वे स्टेशन के पास डॉ० अम्बेडकरजी के मित्र श्री रामचन्द्र राणोजी पवार नांदगांवकर के घर में सम्पन्न हुआ था।

इन समाचारों से स्पष्ट है कि माननीय डॉ० अम्बेडकरजी का अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में उपनयन-विवाह आदि वैदिक संस्कारों की ओर भी यत्किञ्चित् झुकाव अवश्य ही रहा और अपने पत्रों में भी वे वैदिक संस्कार विषयक समाचारों को प्रकाशनार्थ स्थान अवश्य देते थे।

जातिगत भेदभाव के कारण किराये का घर पाना भी दुर्लभ

भारत की नस-नाड़ियों में जातीयता का विष इतना अधिक भरा हुआ है कि तथाकथित निम्न जाति के व्यक्तियों को मकान-मालिक किराये से भी अपने घर नहीं देते। प्रगतिशील महाराज श्री सयाजीराव गायकवाड़ की सेवा में रहते हुए भी मकान मालिकों की इस संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण डॉ० अम्बेडकरजी को असाधारण मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी थीं, पर जो बात बड़ोदा में हुई

वह मुम्बई में नहीं हुई। मुम्बई के भाटिया लोगों पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव होने के कारण डॉ० अम्बेडकरजी को मुम्बई में आवासीय यातनाओं के दौर से नहीं गुजरना पड़ा।

८-१२-१९२३ से २-९-१९३० तक लिखे अनेक पत्रों से यह पता चलता है कि लगभग सात वर्ष तक डॉ० अम्बेडकरजी के पत्र व्यवहार का पता परल मुम्बई स्थित 'दामोदर ठाकरसी हॉल' ही रहा। यह ठाकरसी घराना प्रगतिशील आर्यसमाजी और सुसंस्कृत था। दामोदर ठाकरसी के पिताश्री मूलजी ठाकरसी स्वामी दयानन्द जी की उपस्थिति में स्थापित विश्व की सर्वप्रथम '**आर्यसमाज मुम्बई**' की कार्यकारिणी के सभासद थे। प्रारम्भ में आर्यसमाज और थियोसॉफिकल सोसाइटी में जो ऐक्य स्थापित हुआ, उसका अधिकांश श्रेय मूलजी ठाकरसी को है, क्योंकि थियोसॉफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल अल्कॉट और मैडम ब्लैवेट्स्की को स्वामी दयानन्दजी का परिचय सर्वप्रथम मूलजी ठाकरसी ने ही दिया था। मूलजी ठाकरसी के सुपुत्र नारायण ठाकरसी को तो विश्व की सर्वप्रथम आर्यसमाज का सर्वप्रथम उपाध्यक्ष होने का श्रेय प्राप्त है। मूलजी ठाकरसी के पौत्र श्री विट्ठलदास ने तो अपनी माताजी नाथीबाई दामोदर के स्मरणार्थ कर्वे विद्यालय को तत्कालीन १५ लाख रुपये प्रदान किये थे।[४] आज इस विद्यालय ने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया है, जिसे हम सब लोग 'एस० एन० डी० टी० यूनिवर्सिटी' के रूप में जानते हैं। सम्भवत: अन्य अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणों के अतिरिक्त ठाकरसी परिवार के आर्यसमाजी संस्कारों में दीक्षित होने के कारण बड़ौदा में डॉ० अम्बेडकर को जिस प्रकार आवास विषयक यातनाएँ भोगनी पड़ीं, वैसी मुम्बई में नहीं। 'भारतीय बहिष्कृत समाज सेवक संघ' की ओर से महार बंधुओं को 'महार वतन बिल' के संबंध में सावधान करते हुए जो निवेदन निकाला था, उसके अन्त में डॉ० अम्बेडकरजी ने अपना स्पष्ट पता देते हुए लिखा है—'दामोदर मूलजी ठाकरसी हॉल-परल-मुम्बई'[५] इस प्रकार लगभग सात वर्ष तक डॉ० अम्बेडकरजी के पत्र व्यवहार का पता 'परल-मुम्बई' स्थित 'दामोदर ठाकरसी हॉल' ही रहा।

जातिनिर्मूलन और वर्ण-व्यवस्था विषयक दृष्टिकोण

डॉ० अम्बेडकरजी की एक सुप्रसिद्ध पुस्तक है—'जातिनिर्मूलन', जिसके प्रारम्भ में लिखा गया है—''डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर द्वारा जात-पाँत-तोड़क मण्डल लाहौर के सन् १९३६ के वार्षिक अधिवेशन के लिए तैयार किया गया भाषण, लेकिन जो दिया नहीं गया, क्योंकि स्वागत समिति ने इस आधार पर कि भाषण में व्यक्त विचार अधिवेशन को स्वीकार नहीं होंगे, अधिवेशन समाप्त कर दिया।'' चर्चित अध्यक्षीय भाषण में डॉ० अम्बेडकरजी ने जन्मना नहीं किन्तु कर्मणा वर्ण-व्यवस्था की वकालत करनेवाले आर्यसमाजियों से असहमति प्रकट की है और उसे अव्यावहारिक, काल्पनिक और त्याज्य माना है। डॉ० अम्बेडकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन लेवलों को छोड़ देने का आग्रह करते हैं। इस प्रकार का लेबल लगाने का आग्रह उन्हें निरर्थक और अनावश्यक प्रतीत होता है, उनका कहना है कि बिना इन लेबलों के भी व्यक्ति की योग्यता का अहसास हो जाता है, फिर इन लेबलों की क्या आवश्यकता है?

डॉ० अम्बेडकरजी के इस अध्यक्षीय भाषण के साथ जो परिशिष्ट जोड़ा गया है, उसमें महात्मा गान्धी की तुलना में उन्होंने ''स्वामी दयानन्द द्वारा अनुमोदित वर्ण-व्यवस्था को बुद्धिगम्य और निरुपद्रवी''[६] कहा है। डॉ० अम्बेडकरजी के शब्दों में—

''महात्मा गान्धी जिस वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं, क्या वह वैदिक वर्ण-व्यवस्था है या स्वामी दयानन्द जिस वर्ण-व्यवस्था का अनुमोदन करते हैं वह वैदिक वर्ण-व्यवस्था है? स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायी आर्यसमाजियों के अनुसार वर्ण की वैदिक मान्यताओं का सार है—ऐसे व्यवसायों को अपनाना जो व्यक्ति के स्वाभाविक योग्यता के अनुरूप हो। महात्मा गान्धी के वर्ण का सार है—अपने पूर्वजों के व्यवसाय को अपनाना, चाहे स्वाभाविक योग्यता न भी हो। महात्मा गान्धी की वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था में मुझे कोई फर्क नहीं दिखाई देता। वहाँ तो वर्ण जाति का समानार्थी है। सार रूप में गान्धीजी का वर्ण और जाति इन दोनों का तात्पर्य पूर्वजों के व्यवसाय को अपनाना है। कुछ लोग सोच सकते हैं कि महात्मा ने बहुत प्रगति की है, पर

मेरी दृष्टि में महात्मा गान्धी प्रगति से दूर हैं और परस्पर विरोधी धारणाओं से पीड़ित हैं। वर्ण की वैदिक मान्यताओं को इस प्रकार की व्याख्या देकर उन्होंने जो विशिष्ट था उसको हास्य बना दिया है। जब मैं वैदिक वर्ण-व्यवस्था को भाषणों में दिये कारणों से अस्वीकार करता हूँ, तो मुझे स्वीकार करना होगा कि वर्ण का वैदिक दर्शन जो स्वामी दयानन्द और कुछ अन्यों ने दिया है, वह समझदारीपूर्ण और बगैर हानिकारक है, क्योंकि वह व्यक्ति विशेष का समाज में स्थान निर्धारित करने के लिए जन्म को निर्णायक तथ्य नहीं मानता। वह केवल गुण को स्वीकार करता है। जबकि महात्मा गान्धी का वर्ण--व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण न केवल वैदिक वर्ण-व्यवस्था को फालतू की वस्तु बना देता है, अपितु घृणित भी बना देता है। वर्ण और जाति परस्पर भिन्न मान्यताएँ हैं। वर्ण गुणाश्रित सिद्धान्त है, तो जाति जन्माश्रित सिद्धान्त है। वस्तुतः वर्ण और जाति ये समानार्थी नहीं, अपितु विलोमार्थी शब्द हैं।''[७] इससे पूर्व सितम्बर सन् १९२७ में तमिलनाडु के दलितोद्धारक श्री ई० वी० रामस्वामी नायकर जी भी (१८७९-) श्री महात्मा गान्धीजी से मिलकर उनकी जन्मना वर्ण-व्यवस्था विषयक दृष्टिकोण से अपनी तीव्र असहमति और चिन्ता व्यक्त कर चुके थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महात्मा गान्धी की तुलना में स्वामी दयानन्द प्रतिपादित वर्ण-व्यवस्था से डॉ० अम्बेडकर सहमत हैं और इसीलिए उन्होंने उसे '**बुद्धिगम्य और निरुपद्रवी**' कहा है। पुनरपि डॉ० अम्बेडकर ने अपने मूल भाषण में वर्ण-व्यवस्था को अस्वीकारणीय और अव्यावहारिक माना है।

हम जब आर्यसमाज के १३३ वर्ष के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुण--कर्म-स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था को व्यावहारिक रूप देने में वह ७५ प्रतिशत असमर्थ रहा है और जब तक वह इसे क्रियात्मक रूप देने में पूर्णतया समर्थ नहीं होता, तब तक जमाना डॉ० अम्बेडकर के स्वर में स्वर मिलाकर कहेगा कि वर्ण--व्यवस्था, अव्यावहारिक, काल्पनिक और त्याज्य है। लेकिन इसके साथ ही जातिनिर्मूलन के सन्दर्भ में डॉ० अम्बेडकर और उनके अनुयायियों से जमाने का भी एक

सवाल रहेगा, वह यह कि क्या एक धर्म का परित्याग कर दूसरे धर्म को अंगीकार करने से जातिगत भेद-भाव का उन्मूलन हो जाता है ? क्योंकि डॉ० अम्बेडकरजी ने अपने चर्चित अध्यक्षीय भाषण में कहा है कि—"धार्मिक भावनाओं का उन्मूलन किये बिना जाति-व्यवस्था को तोड़ना सम्भव नहीं है" निःसन्देह जातिगत भेद-भाव को नष्ट करने का डॉ० अम्बेडकर ने यथामति-यथाशक्ति पूर्ण प्रयास किया और सम्भवतः एतदर्थ उन्होंने हिन्दू मत का परित्याग कर बौद्ध सम्प्रदाय को स्वीकार किया, दीक्षा ली, उनके अनेक अनुयायी भी बौद्ध बने, पर बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि न तो आर्यसमाज की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के रहते जातिगत भेदभाव पूर्णतया समाप्त हुआ और न ही डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रदत्त धर्मान्तरण के प्रयोग से जाति-पाँति का विष समाप्त हुआ। (**जाति-पाँति को लेकर जिस दलित वर्ग के सन्दर्भ में मनुस्मृति का विरोध किया गया, किया जाता है। क्या उस दलित वर्ग में आपस में जाति-पाँति टूटी? क्या उनका आपसी छुआछूत पूरी तरह नष्ट हुआ? यदि नहीं तो आपसी विवाह सम्बन्ध होना तो बहुत दूर की बात है।—सम्पादक**) बुद्ध, मूर्तिपूजा के विरोधी थे। आज बौद्ध ही महात्मा बुद्ध और डॉ० अम्बेडकर की मूर्तियों की पूजा कर रहे हैं। हिन्दुओं की तरह बौद्ध सम्प्रदाय से भी मूर्ति नहीं हट पाई। फर्क इतना ही है कि हिन्दू अनेक मूर्तियों की पूजा करते हैं, तो बौद्ध एक-दो प्रतिमाओं की। हिन्दू दीप जलाते हैं, तो बौद्ध मोमबत्ती। हिन्दुओं को केसरी रंग प्यारा है, तो बौद्धों को नीला। एक ने केसरी टोपी पहनी है तो दूसरे ने नीली। यहाँ बाह्य क्रियाओं में तो परिवर्तन हुआ है, पर मूल प्रवृत्ति अब भी ज्यों की त्यों है। रंग बदले हैं, पर अन्तर्मन नहीं बदला। आत्मा का कायाकल्प नहीं हुआ। दयानन्द और अम्बेडकर के अपने-अपने प्रयत्नों के बावजूद जातिगत भेद-भाव आज भी यथावत् विद्यमान है। क्या यह ठीक है कि जाति वही होती है, जो जाते-जाते भी नहीं जाती ? पता नहीं समूल जाति-पाँति का उन्मूलन कब हो पाएगा ? शायद ज्ञान भिन्न और क्रिया भिन्न होने से समाज इस विडम्बनात्मक स्थिति में पहुँच गया है, जातियाँ क्या टूटेंगी ? जबकि समाज अभी अपनी उपजातियाँ तोड़ पाने का भी साहस

नहीं बटोर पा रहा है। जातिनिर्मूलन का एक मात्र अचूक उपाय-अन्तर्जातीय विवाह है, जिसका समर्थन डॉ० अम्बेडकर ने भी किया है। इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह एक पीढ़ी तक ही नहीं, अपितु सात-सात पीढ़ियों तक होंगे, तभी जातिगत भेद-भाव का समूल सर्वनाश होगा। इसके सिवाय अन्य कोई उपाय कारगर प्रतीत नहीं होता।

डॉ० अम्बेडकर ने जात-पाँत तोड़क मण्डल के वार्षिक अधिवेशन (१९३६) की अध्यक्षता के सन्दर्भ में लिखा है कि—"यह मेरे जीवन का निश्चित ही पहला अवसर है, जबकि मुझे सवर्ण हिन्दुओं के अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए आमन्त्रित किया गया हो (और मेरे लिखित अध्यक्षीय भाषण के वैचारिक मतभेदों के कारण अधिवेशन ही स्थगित कर दिया गया हो।) मुझे खेद है कि इसका अन्त दुःखान्त हुआ।"[८]

जात-पाँत तोड़क मण्डल का आर्यसमाज से आत्मीय सम्बन्ध

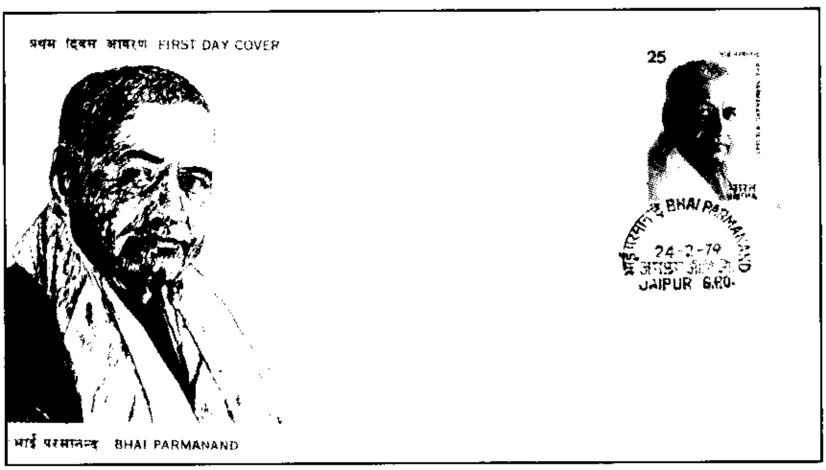
शायद बहुत ही कम लोगों को यह मालूम हो कि आर्यसमाज के जो प्रमुख कार्यकर्त्ता थे, वे जात-पाँत तोड़क मण्डल के भी कार्यकर्त्ता थे। वैधानिक दृष्टि से हमारे कुछेक मित्रों का यह कथन ठीक है कि जात-पाँत तोड़क मण्डल एक स्वतन्त्र संस्था है और उसका आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर गहराई से देखा जाए तो जात-पाँत तोड़क मण्डल और आर्यसमाज का अविभाज्य-सा आत्मीय सम्बन्ध था। इस मण्डल के अधिकांश सभासद वैदिक मतावलम्बी थे।



मण्डल के संस्थापक सन्तराम बी० ए० (१८८७-१९८८) स्वामी दयानन्द की लकीर के फकीर या पूर्णतः दयानन्द के अनुयायी न भी हों, पर दयानन्द के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के प्रति वे नतमस्तक थे। सन् १९७१-७२ में मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में संतराम बी० ए० लिखित स्वामी

दयानन्द नामक एक प्रदीर्घ चरित्र लेख पढाया जाता था। संतराम बी० ए० के लिए अपने 'मण्डल के बाद सबसे निकटतम और आत्मीय अगर कोई संस्था थी, तो वह आर्यसमाज थी।'

श्री संतराम बी० ए० की ओर से डॉ० अम्बेडकर के साथ जो २७.३.१९३७ को पत्र व्यवहार हुआ, उसमें डॉ० अम्बेडकर के अध्यक्षीय भाषण पर तीव्र असन्तोष करनेवाले जो चार या पाँच व्यक्तियों के नाम दिये गये हैं, उनमें क्रमश: प्रथम तीन व्यक्ति तो मेरी जानकारी के अनुसार सुप्रसिद्ध अखिल भारतीय आर्यसमाजी नेता हैं। जिनके नाम हैं—भाई परमानन्द (१८७६-१९४७), महात्मा हंसराज (१८६४-१९३८) और डॉ० गोकुलचन्द नारंग एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् (१८७८-१९६९)।



भाई परमानन्द बचपन में ही आर्यसमाजी बन गये थे, लाहौर के दयानन्द हाईस्कूल व कॉलेज के वे स्नातक थे। दयानन्द कॉलेज लाहौर में आप प्राध्यापक भी रहे और दयानन्द एँग्लो वैदिक (डी० ए० वी०) शिक्षण संस्था के आदेश पर आप प्रचारक के रूप में विदेश गये और आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार किया। ये वे ही भाई परमानन्द हैं, जिन्हें आजन्म काले पानी की सजा हुई थी। जो सरदार भगतसिंह के दादा-पिता के आत्मीय सखा-स्नेही थे, तथा लाहौर के राष्ट्रीय महाविद्यालय में सुखदेव-भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों के प्राध्यापक थे।



दूसरा नाम है महात्मा हंसराज का, जो दयानन्द कॉलेज (डी० ए० वी०) लाहौर के प्राचार्य थे और जिन्होंने किसी प्रकार का पारिश्रमिक न लेते हुए २६ वर्ष (१८८६-१९१२) तक उक्त शिक्षण संस्था की सेवा की थी और जीवन के २६ वर्ष आर्यसमाजी आन्दोलन के लिए समर्पित किये थे।

तीसरे महानुभाव डॉ० गोकुलचन्द नारंग भी भाई परमानन्द के शिष्य और डी० ए० वी० शिक्षण संस्था के विद्यार्थी थे। आप स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित 'भारतीय शुद्धि सभा' (१९२३) की कार्यकारिणी के सभासद थे। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित **'आर्यसमाज का इतिहास'** का आपने प्राक्कथन लिखा है। इन्द्रजी ने इन्हें

आर्यजाति का ज्ञानवृद्ध-वयोवृद्ध नेता कहा है। आप डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भी प्राध्यापक रहे।

२० फरवरी १९२५ में मुम्बई के डॉ० कल्याणदास देसाई की अध्यक्षता में जात-पाँत तोड़क मण्डल का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन को सम्बोधित करनेवाले अधिकांश व्यक्ति आर्यसमाजी ही थे। जिनमें स्वामी श्रद्धानन्द, पं० घासीराम (१८७३-१९३४), स्वामी मुनीश्वरानन्द, स्वामी सत्यदेव आदि उल्लेखनीय हैं। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुआ था, उससे भी इस मण्डल पर आर्यसमाज की छाप या प्रभुत्व की बात स्पष्ट होती है, प्रस्ताव निम्न प्रकार है—

''इस मण्डल की सम्मति में आजकल जो वर्ण-व्यवस्था प्रचलित है, वह बुरी है, इसलिए आवश्यक है कि खान-पान और विवाह विषयक बन्धनों को उठा दिया जाए, इसलिए यह मण्डल प्रत्येक आर्य युवक-युवती को प्रेरणा देता है कि विवाह आदि के कार्यों में जो मौजूदा बन्धन हैं, उन्हें जान-बूझकर तोड़ें और जात-पाँत के बाहर विवाह करें।''[१]

आर्यसमाज और जात-पाँत तोड़क मण्डल के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं—'बीसवीं सदी के प्रथम चरण (सन् १९२१) में लाहौर में जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना हुई, जिसके प्रमुख नेता सन्तराम बी० ए० थे। यद्यपि यह मण्डल आर्यसमाज के संगठन के अन्तर्गत नहीं था, पर इसका संचालन आर्यसमाजियों द्वारा ही किया जा रहा था। यह मण्डल जात-पाँत तोड़कर विवाह सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आन्दोलन करता था।'[१०]

स्पष्ट है कि आर्यसमाज और जात-पाँत तोड़क मण्डल वैधानिक दृष्टि से दो स्वतन्त्र संस्थाएँ होते हुए भी विचारधारा की दृष्टि से जात-पाँत तोड़क मण्डल आर्यसमाज का ही पर्यायवाची या एक पोषक भाग था। आर्यसमाज ने अपने प्रारम्भिक काल से ही जातिनिर्मूलन और दलितोद्धार में विशेष दिलचस्पी ली थी। डॉ० अम्बेडकर भी अपने ढंग विशेष से इन अभियानों में विशेष अभिरुचि रखते थे। इन कार्यक्रमों के सन्दर्भ में विचार साम्य होने के कारण ही जात-पाँत तोड़क मण्डल के माध्यम से श्री संतराम जी बी० ए० ने डॉ० अम्बेडकरजी को **'मण्डल'** के वार्षिक अधिवेशन (१९३६) की अध्यक्षता के लिए आमन्त्रित किया था। लेकिन न जाने वे कौन से कारण रहे कि तत्कालीन कतिपय आर्यसमाजी डॉ० अम्बेडकरजी के विचारों को यथावत् सुनने की सहनशीलता का भी परिचय नहीं दे सके। काश यदि वे डॉ० अम्बेडकरजी के विचारों को धीरज से सुन लेते। मतभेदों के बावजूद अपनी आग्रही भूमिका को एक ओर रखकर उदारमतवादियों के लिए खुलकर चर्चा करने का वातावरण बनाना जरूरी होता है, पर तत्कालीन आर्यसमाजी उस प्रकार की खुली चर्चा का वातावरण बनाने में असमर्थ रहे। यदि वे समर्थ होते तो, आज उन्हें कम-से-कम इस बात का तो श्रेय मिलता कि डॉ० अम्बेडकरजी को अपने अधिवेशन की अध्यक्षता करने का पहला अवसर सर्वप्रथम उन्होंने ही दिया था। अब तो इतिहास में आर्यसमाज केवल एक अयशस्वी निमन्त्रक या संयोजक बनकर रह गया है। इतिहासकार इतना ही कह सकेगा कि डॉ० अम्बेडकरजी को अपने वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करने का एकमात्र निमन्त्रण यदि किसी ने दिया था

तो वह आर्यसमाजियों ने, पर वह भी मूर्तरूप धारण न कर सका, अयशस्वी रहा। डॉ० अम्बेडकरजी के शब्दों में—"मेरा विश्वास है—यह पहला अवसर है जबकि स्वागत समिति ने अध्यक्ष की नियुक्ति को समाप्त कर दिया, क्योंकि वह अध्यक्ष के विचारों को स्वीकार नहीं करती थी।"[११]

चर्चित अध्यक्षीय भाषण में डॉ० अम्बेडकरजी ने शास्त्रों के साथ वेद की भी आलोचना की थी, जो तत्कालीन वेद-प्रामाण्यवादी आर्यसमाजियों को सहन नहीं हुई। सम्भवत: इसीलिए आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर के पूर्व प्रधान श्री हरभगवान् ने अपने १४ अप्रैल १९३७ के पत्र में डॉ० अम्बेडकरजी को लिखा था कि—"हममें से कुछ हैं, जो चाहते हैं कि अधिवेशन बगैर किसी अप्रिय घटना के साथ सम्पन्न हो, इसलिए वे चाहते हैं कि—कम-से-कम वेद शब्द इस समय के लिए छोड़ दिया जाए।"[१२] स्मरण रहे इस अध्यक्षीय भाषण में डॉ० अम्बेडकरजी ने अपने भावी धर्मांतरण का संकेत देते हुए यह घोषणा कर दी थी कि 'हिन्दू के रूप में मेरा यह अन्तिम भाषण होगा।' वेद की तथाकथित आलोचना और भविष्य में धर्मांतरण का संकेत, ये दोनों ही तथ्य ऐसे थे कि जिन्हें सहजता से सहन कर पाना आर्यसमाज के लिए असम्भव था। दोनों पक्ष अपने-अपने स्थान पर अडिग रहे। डॉ० अम्बेडकर अपने विचारों पर दृढ़ थे और किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार न थे और उन्होंने बिना लाग-लपेट के स्पष्ट कर दिया था—"मैं अल्पविराम तक परिवर्तित करने के लिए तैयार नहीं हूँ, मैं अपने भाषण पर किसी प्रकार के सेंसर की अनुमति नहीं दूँगा।" इसके अतिरिक्त जात-पाँत तोड़क मण्डल के प्रतिनिधि को उन्होंने यह भी लिखा था कि—"यदि आप में से कोई भी थोड़ा संकेत करता कि आप मुझे अध्यक्ष चुनकर जो सम्मान दे रहें हैं। उसके बदले मुझे धर्मांतरण (हिन्दू से बौद्ध) के कार्यक्रम में अपने विश्वास का परित्याग करना होगा, तो मैं आपसे स्पष्ट शब्दों में कह देता कि मैं आपसे मिलनेवाले सम्मान से अधिक अपने विश्वास की परवाह करता हूँ।"

स्वामी श्रद्धानन्द और डॉ० अम्बेडकर

जातिनिर्मूलन और दलितोद्धार के सन्दर्भ में आर्यसमाज के प्रामाणिकतापूर्ण ठोस-क्रियाकलापों से डॉ० अम्बेडकर अत्यन्त ही प्रभावित थे। स्वामी दयानन्द के अनुयायी गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द (१८५६-१९२६) के सन्दर्भ में वे अपनी रचना '**व्हॉट कांग्रेस एण्ड गाँधी हैव डन टू दि अन्टचेबल्स**' में लिखते हैं कि '**स्वामी श्रद्धानन्द दलितों के सर्वश्रेष्ठ सहायक और समर्थक थे।** अस्पृश्यता-निवारण से सम्बन्धित (कांग्रेस की) समिति में रहकर यदि उन्हें स्थिरता से काम करने का अवसर मिल पाता तो निःसन्देह एक बहुत बड़ी योजना आज हमारे सामने विद्यमान होती।''[१३]

स्वामी श्रद्धानन्दजी के निधन का समाचार पाकर डॉ० अम्बेडकर जी की उपस्थिति में जो शोक प्रस्ताव पारित हुआ, उसकी शब्दावली इस प्रकार है—''स्वामी श्रद्धानन्दजी की अमानवीय हत्या का समाचार पाकर इस सभा को (अर्थात्-बहिष्कृत वर्ग, कुलाबा जिला परिषद, प्रथम अधिवेशन, १९-२० मार्च १९२७ को) अतिशय दुःख हुआ है। हमारा यह अनुरोध है कि उनके द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार हिन्दू जाति अस्पृश्यता का निर्मूलन करे।''[१४]

लाला लाजपतराय और डॉ० अम्बेडकर

डॉ० बाबासाहब अम्बेडकरजी का मराठी में बृहद् जीवन चरित्र लिखनेवाले डॉ० चांगदेव भवानराव खैरमोडे के मतानुसार राष्ट्रीय नेताओं में लाला लाजपतराय डॉ० अम्बेडकरजी को अपने बहुत नजदीक प्रतीत होते थे। उनकी दृष्टि में तिलक, गोखले और गान्धी अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण थे, पर वे उन्हें उतने नजदीक के महसूस नहीं होते थे, जितने कि लाला लाजपतराय। इसका एक कारण यह था कि लालाजी और अम्बेडकरजी का सन् १९१३ से १९१६ की कालावधि में अमरीका निवासकाल में घनिष्ठ सम्बन्ध आ चुका था तथा उन्हें इस बात का विश्वास हो चुका था कि लालाजी जैसे राजनीति में गरम दल से सम्बद्ध हैं, वैसे ही धार्मिक और समाज-सुधार के क्षेत्र में भी कट्टर क्रियाशील

सुधारक हैं। सन् १९१४ में लालाजी ने अपना अधिकांश समय कोलंबिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में बिताया था। तब उन्हें अपने सामने की मेज पर उनसे भी पहले आकर बैठा और उनके बाद ग्रंथालय से बाहर जानेवाला एक भारतीय विद्यार्थी दिखलाई दिया। उन्होंने जब उत्सुकतावश स्वयं उसका परिचय प्राप्त किया, तब उन्हें यह पता चला कि वह विद्यार्थी भीमराव अम्बेडकर था। उसका परिचय पाकर तथा उसके गहन ज्ञान को देखकर उन्हें अतिशय आनन्द हुआ था।

खैरमोडेजी ने अपने चरित्र ग्रन्थ में अम्बेडकरजी द्वारा लिखा—'स्वर्गीय लाला लाजपतराय' लेख उद्धृत करने से पूर्व इस श्रद्धाञ्जलि परक लेख लिखने से पहले डॉ० अम्बेडकरजी की जो मनोदशा थी उसका वर्णन करते हुए लिखा है कि—

लाला लाजपतराय जी (१८६५-१९२८) की मृत्यु का समाचार सुनकर डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर अत्यन्त ही व्यथित हो गये। [स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान को छोड़कर अन्य] किसी भी राष्ट्रीय नेता की मृत्यु से पूर्व और पश्चात् वे इतने व्यथित नहीं हुए थे। उसी रात उन्होंने 'बहिष्कृत भारत सभा' की ओर से सार्वजनिक शोक सभा का आयेजन किया था। उसमें लालाजी पर भाषण करते समय उनकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। उन्होंने अपने समस्त सार्वजनिक जीवन में किसी भी राष्ट्रीय नेता की मृत्यु के बाद शोक सभा का आयोजन नहीं किया था और न ही श्रद्धाञ्जलि परक शोक सभा में भाषण दिया था। नत्थूराम गोड़से की तीन गोलियों से दि० ३०-१-१९४८ को महात्माजी का खून हुआ, तब भी डॉ० बाबासाहब गान्धीजी के विषय में या उनकी मृत्यु के विषय में एक शब्द भी नहीं बोले थे।''

लालाजी के बलिदान पर डॉ० बाबासाहबजी ने जो श्रद्धाञ्जली लिखित रूप में अभिव्यक्त की थी, उसे इसी पुस्तक के परिशिष्ट चार में यथावत् अविकल रूप से दिया गया है।

मास्टर आत्माराम अमृतसरी और डॉ० अम्बेडकर

बात अंग्रेजों के शासनकाल की है। डॉ० अम्बेडकरजी (१८९१-१९५६) दलितों के नेता के रूप में उभर चुके थे। दलितों के पृथक् निर्वाचन क्षेत्र की भी उन्होंने माँग की थी। इस माँग के विरोध में २० सितम्बर १९३२ को महात्मा गान्धीजी ने आमरण अनशन किया था। अनशन विषयक इस प्रसंग का विश्लेषण करते हुए पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने लिखा था कि—' श्री अम्बेडकरजी को प्रथम शरण तो आर्यसमाज में ही मिली थी। (जीवन चक्र प्रकाशक-कला प्रेस इलाहाबाद, संस्करण-१९५४)। पर उपाध्यायजी ने वहाँ उन घटना-प्रसंगों या काल का उल्लेख नहीं किया है, जिससे इस जिज्ञासा की तृप्ति हो कि 'बाबासाहब अम्बेडकर जीवन में पहली बार कब और कैसे आर्यसमाज के सम्पर्क में आये ?'

लगभग पन्द्रह साल तक डॉ० अम्बेडकर के सम्पर्क में रहनेवाले श्री चांगदेव भवानराव खैरमोडे ने सन् १९५२ में डॉ० भीमरावजी अम्बेडकर का चरित्र लिखा था। उस चरित्र का अध्ययन करते समय पता चला कि सर्वप्रथम सन् १९१३ में बड़ोदरा निवास-काल में श्री अम्बेडकर आर्य विद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी और आर्यसमाज बड़ोदरा के सम्पर्क में आये थे।

पं० आत्मारामजी अमृतसरी



पं० आत्मारामजी (१८६६-१९३८) मूलतः अमृतसर के निवासी थे। आर्य विद्वान् पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी की प्रेरणा से उन्होंने अंग्रेज सरकार की नौकरी न करने का संकल्प किया था। सन् १८९१ में उन्होंने दयानन्द हाईस्कूल लाहौर में अध्यापन किया और उसी समय वे पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा, लाहौर के उपमन्त्री (१८९४) भी बने। सन् १८९७ में हुतात्मा पं० लेखरामजी का बलिदान हो जाने के पश्चात् पं० आत्मारामजी ने उनके द्वारा पूरे भारतवर्ष में घूमकर संकलित की गई स्वामी दयानन्द विषयक

जीवन सामग्री को सूत्रबद्ध कर एक बृहद् ग्रन्थ का रूप प्रदान किया। तथाकथित शूद्रों को वैदिकधर्मी बनाकर भरी सभा में उनके कर–कमलों से उन्होंने अन्न और जल भी ग्रहण किया था। समय–समय पर उन्होंने पौराणिकों और मौलवियों से शास्त्रार्थ भी किए थे। (आर्यसमाज का इतिहास :सत्यकेतु विद्यालंकार)। बड़ोदरा राज्य की ओर से न्याय विभाग के लिए विविध भाषाओं में कोश बनाये गये थे। उसके हिन्दी विभाग की जिम्मेदारी आपको ही सौंपी गई थी। यह ग्रन्थ '**श्री सयाजी शासन कल्पतरु**' के नाम से प्रकाशित हुआ था। (डॉ० बाबासाहेब अम्बेडकर : डॉ० सूर्यनारायण रणसुभे : राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली संस्करण १९९२)। मौलिक और अनूदित कुल मिलाकर उन्होंने लगभग बीस ग्रन्थ लिखे थे।

जब दलितों को विधर्मी बनते देख बड़ोदरा नरेश ने अपनी रियासत में दलितोद्धार के कार्य को प्रभावशाली बनाने का संकल्प किया, तब उन्होंने स्वामी दयानन्द के शिष्य आर्य संन्यासी स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी (१८६०–१९१४) से ऐसे व्यक्ति की माँग की जो उच्चवर्णीय होते हुए भी दलितों में ईमानदारी से कार्य कर सके, तो उस समय स्वामी नित्यानन्दजी ने मास्टर आत्माराम जी से अनुरोध किया। तदनुसार पं० आत्मारामजी ने सन् १९०८ से १९१७ तक बड़ोदरा रियासत में और तत्पश्चात् कोल्हापुर रियासत में दलितोद्धार का कार्य किया। दलितों में उनके द्वारा किये गये कार्य की महात्मा गाँधी, कर्मवीर विट्ठल रामजी शिंदे, श्री जुगल किशोर बिड़ला, इन्दौर नरेश तुकोजीराव होलकर आदि ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। (आदर्श दम्पति : सुश्री सुशीला पण्डिता)।

बड़ोदरा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ को दलितोद्धार के कार्य में सफलता उस समय से प्राप्त हुई जब उन्होंने पं० आत्मारामजी को अपनी रियासत के छात्रावासों का अध्यक्ष और पाठशालाओं का निरीक्षक नियुक्त किया था। बड़ोदरा रियासत में शूद्रातिशूद्रों के लिए जो सैकड़ों पाठशालाएँ स्थापित की गई थीं, उनमें लगभग बीस हजार बालक–बालिकाओं ने शिक्षा ग्रहण की थी। बड़ोदरा में उन्होंने आर्य कन्या महाविद्यालय की भी स्थापना की थी।

कोल्हापुर नरेश राजर्षि शाहू महाराज जब बड़ोदरा पधारे

तो पं० आत्मारामजी के कार्यों से बहुत ही प्रभावित हुए और उन्हें शीघ्र ही कोल्हापुर आने का निमन्त्रण दे गये। १९१८ में जब पं० आत्माराम कोल्हापुर पधारे तो शाहू महाराज ने उन्हें अपना मित्र ही नहीं, अपितु धर्मगुरु भी माना और अपनी रियासत को आर्य धर्मी बनाने के लिए उनके कर-कमलों से जनवरी १९१८ में आर्यसमाज की स्थापना की। कोल्हापुर की राजाराम महाविद्यालय आदि शिक्षण संस्थाओं को भी उन्होंने संचालन हेतु आर्य संस्थाओं को सौंप दिया। इस प्रकार गुजरात की बड़ोदरा और महाराष्ट्र की कोल्हापुर रियासत के माध्यम से पं० आत्माराम जी ने सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में कार्य करते हुए दलितोद्धार की दृष्टि से उल्लेखनीय भूमिका निभायी थी।

बाबासाहब अम्बेडकर का आर्यसमाज बड़ोदरा में निवास (१९१३)

श्री भीमरावजी अम्बेडकर ने सन् १९०७ में मैट्रिक और १९१२ में पर्शियन और अंग्रेजी विषय लेकर बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी दौरान पं० आत्मारामजी सन् १९०८ से १९१७ तक बडो़दरा रियासत में दलितोद्धार का कार्य कर रहे थे। इसी कालावधि में बी० ए० उत्तीर्ण होने के उपरान्त सन् १९१३ में श्री भीमराव अम्बेडकर बड़ोदरा आये और वहाँ की दलित बस्ती में रहने लगे। इस घटना का वर्णन करते हुए डॉ० अम्बेडकरजी के चरित्र लेखक श्री चांगदेव भवानराव खैरमोडे ने लिखा है—

"भीमराव बड़ोदरा में २३ जनवरी १९१३ के आस-पास पधारे थे। वहाँ प्रशासन की ओर से उनके निवास और भोजन की व्यवस्था नहीं हो पाई थी, अतः **वे सबसे पहले वहाँ की दलित बस्ती (महारवाड़े) में दो-तीन दिन रहे। वह जगह हर प्रकार से असुविधाजनक थी। वहीं पर उनका पं० आत्मारामजी से परिचय हुआ। पण्डितजी पंजाबी आर्यसमाजी थे, वे बड़ोदरा रियासत की दलितों की पाठशाला के इन्स्पैक्टर थे। वे ही भीमराव को अपने साथ आर्यसमाज के कार्यालय में ले गये। जब तक अन्यत्र कहीं व्यवस्था नहीं होती, तब तक भीमराव ने वहीं रहने का निश्चय किया।** वह जगह श्री भीमराव को जिस कार्यालय में काम करना था, वहाँ से डेढ़ मील की दूरी पर

थी।''

इस अवसर पर श्री अम्बेडकर एक सप्ताह से भी कुछ अधिक समय तक आर्यसमाज बड़ोदरा में आर्यविद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी के साथ रहे।

भीमरावजी को बड़ोदरा नरेश की सेना में लैफ्टिनेन्ट पद पर नियुक्त किया गया था, परन्तु सन् १९१३ की इस यात्रा में श्री अम्बेडकर अधिकतम दो सप्ताह ही बड़ोदरा में रह पाये। एक दिन उन्हें मुम्बई से तार मिला कि पिताजी बहुत बीमार हैं। जब वे मुम्बई पहुँचे तो पिताजी अन्तिम सांसें गिन रहे थे। छह वर्ष की आयु में उनकी माताजी का देहान्त हो चुका था, तो अब २१ वर्ष ९ महीने की अवस्था में पिताजी की छत्र छाया भी उनके ऊपर से उठ गई।

बड़ोदरा के आर्यनरेश द्वारा श्री अम्बेडकर को छात्रवृत्ति (१९१३-१६)

पिताजी के देहावसान के बाद शोकाकुल अवस्था में श्री अम्बेडकर जब मुम्बई में ही थे, तब अकस्मात् बड़ोदरा के आर्यनरेश सयाजीराव गायकवाड़ का मुम्बई में आगमन हुआ। बड़ोदरा रियासत की ओर से उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति देकर चार विद्यार्थियों को अमेरिका भिजवाने का उनका विचार था। मुम्बई में जब अम्बेडकर बड़ोदरा नरेश से मिले तो, उन्होंने उक्त छात्रवृत्ति के अनुबन्ध--पत्र पर हस्ताक्षर किये। इस अनुबन्ध के अनुसार अमेरिका में अध्ययन पूर्ण होने के बाद बड़ोदरा रियासत में कम से कम दस वर्ष तक श्री अम्बेडकरजी को अनिवार्य रूप से नौकरी करनी थी।

पं० आत्माराम और श्री अम्बेडकर की द्वितीय भेंट (१९१७)

बड़ोदरा नरेश ने उन्हें १५ जून १९१३ से १४ जून १९१६ तक के लिए विदेश जाकर उच्च अध्ययन प्राप्त करने हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की थी। उक्त कालावधि समाप्त होने के बाद १९१७ में श्री अम्बेडकरजी जब पुनः बड़ोदरा रियासत में नौकरी करने पधारे तो सबसे पहले पं० आत्मारामजी अमृतसरी के निवास स्थान पर ही पहुँचे। पं० आत्मारामजी से हुई पहली मुलाकात के

समय श्री अम्बेडकर बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण लगभग २२ वर्ष के नवयुवक थे। चार वर्ष बाद अब जब वे पं० आत्मारामजी से मिलने आये तो 'प्राचीन भारत का व्यापार' इस शोध–प्रबन्ध पर एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर चुके थे। लंदन तथा वाशिंगटन (अमेरिका) के बन्धनमुक्त उदात्त, स्फूर्तिदायक, अधुनातन जीवन के अनुभव से भी वे समृद्ध हो चुके थे। सम्प्रति उनकी आयु लगभग २६ वर्ष थो।

बड़ोदरा आने से पूर्व श्री अम्बेडकरजी ने प्रशासन को अपनी नौकरी के साथ निवास–भोजनादि का प्रबन्ध करने के लिए लिखा था। प्रत्युत्तर में उन्हें त्वरित बड़ोदरा आकर अपनी सेवा शुरू करने का आग्रह किया गया था, पर निवास–भोजनादि की व्यवस्था के विषय में उसमें किसी प्रकार का उल्लेख नहीं था, अतः इससे पूर्व के आत्मीयता पूर्ण व्यवहार को ध्यान में रखते हुए डॉ० अम्बेडकर जब बड़ोदरा आये तो सबसे पहले पं० आत्माराम जी अमृतसरी के पास ही पहुंचे। उन्होंने ही अपने परिचय से डॉ० अम्बेडकरजी की निवास, भोजन की व्यवस्था एक पारसी सज्जन के यहाँ पर करवा दी। इस समय पं० आत्मारामजी के सुपुत्र श्री आनन्दप्रिय आगरा में बी० ए० कर रहे थे। उनके परिवार के अन्य सदस्य भी बड़ोदरा में नहीं थे। अकेले पं० आत्मारामजी ही आर्यसमाज में रह रहे थे।

पं० आत्माराम और डॉ० अम्बेडकर का तृतीय सम्पर्क (१९२४)

पं० आत्माराम और डॉ० अम्बेडकर के सम्पर्क का तीसरा उल्लेख दूसरी मुलाकात के सात वर्ष बाद मिलता है। दूसरी मुलाकात सन् १९१७ में हुई थी और तीसरा सम्पर्क प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष पत्र द्वारा सन् १९२४ में स्थापित हुआ था। इस सम्पर्क का कारण डॉ० अम्बेडकरजी द्वारा बड़ोदरा सरकार से अमेरिकी उच्च शिक्षा हेतु लिया हुआ कर्ज और उससे मुक्त होने की उनकी छटपटाहट था।

संकीर्ण मानसिकता ने अम्बेडकरजी की नौकरी छुड़ाई

बड़ोदरा प्रशासन के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करके श्री

अम्बेडकरजी ने उच्च शिक्षा अध्ययन हेतु बीस हजार रुपये का ऋण लिया था। इस ऋण से बड़ोदरा प्रशासन में नौकरी करके उऋण होने की बात तय हुई थी। निश्चयानुसार डॉ० अम्बेडकर नौकरी करने के लिए बड़ोदरा भी आ चुके थे, पर इस समय बड़ोदरा का कोई भी भोजनालय दलित होने के कारण उन्हें भोजन देने के लिए तैयार न था। जिस पारसी सज्जन के पास उनके निवास–भोजनादि की व्यवस्था की गई थी, वहाँ से भी उन्हें रूढ़िवादियों ने जबरदस्ती निकाल दिया था। उन दिनों शहर में प्लेग की बीमारी भी फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में शहर का कोई भी व्यक्ति उन्हें जगह देने को तैयार नहीं था। विशेष कठिनाई भोजन की कोई सुविधा न होने के कारण थी। अन्त में भूख–प्यास से व्याकुल डॉ० अम्बेडकरजी एक पेड़ के नीचे बैठकर बिलख-बिलखकर रो पड़े। एक उच्च शिक्षा विभूषित व्यक्ति को केवल इसलिए नकारा जा रहा था कि वह जन्म से दलित है। बड़ोदरा नरेश तो उन्हें अर्थमन्त्री बनाना चाह रहे थे, परन्तु इस क्षेत्र का उन्हें कोई अनुभव न होने के कारण सेना में सचिव के रूप में उनकी नियुक्ति की गई थी। सेना का सचिव पद भी एक प्रतिष्ठित पद था। इस नियुक्ति से भी उच्चवर्गीय व्यक्ति भीतर ही भीतर कुढ़े हुए थे। केवल दलित होने के कारण 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' की बात खटाई में पड़ रही थी। इनके अधीनस्थ कर्मचारी भी जब उन्हें फाइल देते तो दूर से फेंककर देते थे। कार्यालय में रखा पानी भी वे नहीं पी सकते थे। परिणामत: ऐसी असह्य अपमानजनक स्थिति में बड़ोदरा प्रशासन की नौकरी छोड़कर उन्हें मुम्बई वापस लौट जाने के लिए विवश होना पड़ा।

छत्रपति शाहू महाराज की अम्बेडकरजी पर छत्रछाया

सन् १९१७ से १९२४ तक की कालावधि में श्री अम्बेडकर विद्याध्ययन के अतिरिक्त विविध सार्वजनिक कार्यों में भी तल्लीन रहे। सन् १९२३ में जब वे लन्दन में विद्याध्ययन कर रहे थे, तब उन्होंने कोल्हापुर नरेश शाहू महाराज से दो सौ पौंड का आर्थिक सहयोग देने का अनुरोध किया था। लन्दन में रहते हुए उन्होंने 'एम० एस० सी०' 'बैरिस्टर', 'पी-एच० डी०' और 'डी० एस० सी०' की उपाधियाँ प्राप्त कीं। १९२३ से पूर्व भी शाहू महाराज श्री

अम्बेडकरजी को विद्याध्ययन हेतु डेढ़ हज़ार रुपये की सहायता दे चुके थे। नागपुर (१९१७) व कोल्हापुर (२१ मार्च १९२०) में सम्पन्न दलित परिषदों की अध्यक्षता भी राजर्षि शाहू महाराज ने की थी। इन दोनों परिषदों में श्री अम्बेडकर जी भी उपस्थित थे। इसी कालावधि में श्री अम्बेडकर और शाहू महाराज की सर्वप्रथम भेंट कहीं न कहीं हुई होगी। ३१ जनवरी १९२० को अम्बेडकरजी द्वारा शुरु किये गये साप्ताहिक 'मूकनायक' पत्र को शाहू महाराज ने एक हजार रुपये का दान दिया था। सितम्बर १९२० में विद्याध्ययन के लिए श्री अम्बेडकर लन्दन गये थे। इससे पूर्व वे 'बहिष्कृत समाज परिषद', 'अस्पृश्य समाज परिषद', बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना और संचालन कर चुके थे। बहिष्कृत समाज परिषद की स्थापना तो उन्होंने मई १९२० में नागपुर में ही की थी।

आथिक संकट काल में डॉ० अम्बेडकर का पं० आत्मारामजी को पत्र

लन्दन से वापस लौटने पर बैरिस्टर अम्बेडकर ने जून १९२३ में अपना वकालत का व्यवसाय प्रारम्भ किया। ५ जुलाई १९२३ को वे हाईकोर्ट के वकील भी बने, पर दलितों के प्रति समाज में उपेक्षा भाव होने के कारण उनकी आय इतनी नहीं थी कि वे अनुबन्ध के अनुसार बड़ोदरा प्रशासन के ऋण से उऋण हो सकें। सम्प्रति श्री अम्बेडकरजी की आयु लगभग ३३ वर्ष हो चुकी थी। बडो़दरा रियासत की ओर से पैसे वापस करने के लिए तकाजा लगा हुआ था। ऐसी स्थिति में उन्होंने ९ दिसम्बर १९२४ को आर्यसमाजी विद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी को याद किया और पत्र लिखकर उन्हें यह स्पष्ट किया कि 'हमारी आर्थिक परिस्थिति अभी ऐसी नहीं हो पाई है कि हम किसी निश्चित कालावधि तक हफ्ते-हफ्ते से अपना कर्ज वापस कर सकें। तत्काल पं० आत्मारामजी ने बड़ोदरा प्रशासन को डॉ० अम्बेडकरजी की व्यथा से सुपरिचित कराया और उन्हें इस विषय में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का अनुरोध किया। फलस्वरूप बड़ोदरा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ ने इस कर्ज प्रकरण को ही सदा-सदा के लिए रद्द कर दिया।'[७]

बाबासाहब के निर्माण में आर्यसमाज की त्रिमूत का अविस्मरणीय सहयोग

बड़ोदरा और कोल्हापुर नरेश ने बाबासाहब अम्बेडकरजी को स्वदेश और विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी आर्थिक सहायता प्रदान की थी। श्री अम्बेडकर जब बी०ए० में पढ़ रहे थे, तभी से बड़ोदरा नरेशजी ने उन्हें प्रतिमास पन्द्रह रुपये की छात्रवृत्ति देनी प्रारम्भ की थी। इन दोनों प्रगतिशील आर्यनरेशों के निमन्त्रण पर ही आर्यविद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी ने पददलित और उपेक्षित समाज के लिए अपने जीवन के लगभग मूल्यवान् तीन दशक समर्पित किये थे। श्री सयाजीराव गायकवाड़, राजर्षि शाहू महाराज तथा पं० आत्मारामजी अमृतसरी से श्री अम्बेडकरजी को क्रमशः सहृदयतापूर्वक आत्मीयता और अविस्मरणीय आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी। ये तीनों भी महापुरुष तहेदिल से आर्यसमाजी थे। महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश पर इस त्रिमूर्ति की गहरी आस्था थी। मराठी 'सत्यार्थप्रकाश' प्रकाशित करने में बड़ोदरा और कोल्हापुर नरेश ने समय-समय पर उल्लेखनीय आर्थिक सहायता प्रदान की थी। पं० आत्मारामजी ने तो उर्दू के साथ पंजाबी में भी सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद किया था।

श्री अम्बेडकरजी से पं० आत्मारामजी आयु में तीस वर्ष बड़े थे। उन्होंने श्री अम्बेडकर को उस समय अपना पितृतुल्य वात्सल्य प्रदान किया, जब रूढ़िवादी संकीर्ण समाज बड़ोदरा में उनके निवास भोजनादि की भी व्यवस्था करने के लिए तैयार नहीं था। उच्च अधिकारी होने के बावजूद भी उन्हें कार्यालय में रखा पानी तक पीने की अनुमति नहीं थी और उनके मातहत कर्मचारी भी फाइल आदि फेंक-फेंककर दे रहे थे। पं० नरदेवरावजी वेदतीर्थ ने अपनी आत्मकथा में पं० आत्मारामजी के विषय में लिखा है, 'अद्भुत वक्तृत्व, अनुपम कार्य कर्तृत्व ? अनथक लेखक, अद्वितीय प्रबन्धक आदि गुणों के कारण मास्टर आत्मारामजी का नाम आर्यसमाज के सर्वोच्च नेताओं की पक्तियों में दर्शनीय था। मास्टरजी बड़े मिलनसार, विनोदी और निरभिमानी पुरुष थे और उनकी दिनचर्या ऐसी थी, जैसे—घड़ी का काँटा। समय को कभी भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। कट्टर, किन्तु विचारशील सामाजिक थे।

आपका विद्याविलास और स्वाध्याय प्रबल था। बड़ोदरा में जितनी भी सामाजिक जागृति दिखलाई पड़ती है और जितनी भी संस्थाएँ हैं, उन सबका श्रेय मास्टरजी को है। बड़ोदरा के महाराज आपसे अत्यन्त प्रसन्न थे और आपको उन्होंने राज्यरत्न, राज्यमित्र, रावबहादुर आदि उपाधियों से विभूषित किया था।' (आप बीती और जग बीती : प्रकाशक–गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार, संस्करण–१९५७ : पृष्ठ ३१८–१९)।

डॉ० अम्बेडकरजी ने भी अपने एक सुपुत्र का नाम 'राजरत्न' ही रखा था। सम्भव है राजरत्न पं० आत्मारामजी के उदात्त गुणों की स्मृति में ही श्री अम्बेडकरजी ने उक्त नाम रखा हो। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बड़ोदरा नरेश सयाजीराव गायकवाड़, कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहूजी महाराज तथा आर्य विद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी की त्रिमूर्ति के आर्योचित उदार आचरण को ध्यान में रखकर ही पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने सन् १९५४ में प्रकाशित 'जीवन–चक्र' नामक आत्मकथा में लिखा था कि 'श्री अम्बेडकरजी को प्रथम शरण तो आर्यसमाज में ही मिली थी।'

आर्य महापुरुषों के प्रति डॉ० अम्बेडकरजी का कृतज्ञता भाव

डॉ० अम्बेडकरजी भी आर्य महापुरुषों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता भाव रखते थे। उन्होंने अपनी पी–एच० डी० का प्रकाशित शोध–प्रबन्ध बड़ोदरा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ को समर्पित किया है। डॉ० अम्बेडकरजी के गुरु ज्योतिबा फुलेजी को महाराज सयाजीराव गायकवाड़जी ने ही सन् १८८६ में मुम्बई के एक समारोह में 'महात्मा' उपाधि प्रदान की थी। ६ मई १९२२ को कोल्हापुर नरेश शाहू महाराज का निधन हो गया। १० मई १९२२ को श्री अम्बेडकर ने युवराज राजाराम महाराज को लिखे अपने पत्र में कहा था—

'महाराज के निधन का समाचार पढ़कर मुझे तीव्र आघात पहुँचा। इस दु:खद घटना से मुझे दोहरा दु:ख हुआ है। जहाँ मैं अपना एक असाधारण मित्र खो बैठा हूँ वहाँ दलित समाज अपने एक सबसे महान् हितचिन्तक से वंचित हो गया है। मैं स्वयं जब

इस शोक में आकुल-व्याकुल हूँ, ऐसे समय में मैं आपके और महारानी के दु:ख में अन्त:करण पूर्वक सहानुभूति व्यक्त करने की त्वरा कर रहा हूँ।'

स्वामी श्रद्धानन्दजी के विषय में डॉ० अम्बेडकरजी लिखते हैं—'**स्वामीजी अति जागरूक एवं प्रबुद्ध आर्यसमाजी थे और सच्चे दिल से अस्पृश्यता को मिटाना चाहते थे।**' सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय व आर्यसमाजी नेता लाला लाजपतराय की सन् १९१५ में ही अमेरिका के एक पुस्तकालय में श्री अम्बेडकरजी से मुलाकात हुई थी। लालाजी ने तब इस भारतीय विद्यार्थी से बड़ी ही आस्थापूर्वक कुशलक्षेम पूछकर राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा की थी। अम्बेडकरजी दलित समाज से सम्बद्ध हैं, यह जानकारी तो लालाजी को बहुत-सा काल गुजरने के बाद ही मिली। लालाजी के सम्बन्ध में श्री अम्बेडकरजी ने लिखा है—'उनके पिताजी आर्यसमाजी थे, अत: उन्हें प्रारम्भ से ही उदारमतवाद की घुट्टी पिलाई गई थी। राजनीतिक और सामजिक दोनों ही दृष्टियों से वे क्रान्तिकारी थे। दलितोद्धार के आन्दोलन में वे विश्वसनीय प्रामाणिकता और सहानुभूति के साथ शामिल थे।'

डॉ० अम्बेडकरजी ने श्री सन्तराम बी० ए० और भाई परमानन्दजी के जात-पाँत तोड़क मण्डल से प्रेरणा ग्रहण करके ही 'समाज समता संघ' की स्थापना की थी। इस संघ के वे स्वयं अध्यक्ष थे। भारतीय समाज और राष्ट्र को भाई परमानन्द और श्री सन्तराम बी० ए० जैसे सार्वजनिक कार्यकर्ता आर्यसमाज की ही देन हैं। बाबासाहब अम्बेडकरजी अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में वेदोक्त पद्धति से सम्पन्न विवाह-उपनयन आदि संस्कारों और श्रावणी कार्यक्रमों में शामिल होते हुए नजर आते हैं। घरेलू और सार्वजनिक पत्रों में 'जोहार' के स्थान पर 'नमस्ते' करते हुए दिखलाई देते हैं। सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह आदि समाज-सुधार के उपक्रमों में सक्रिय आस्था बतलाते हैं। निश्चित रूप से उनकी इन सब गतिविधियों की पृष्ठभूमि में महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज आन्दोलन की अविस्मरणीय प्रेरणा रही है। इसका श्रेय बड़ोदरा की निर्धन-दलित बस्ती से श्री अम्बेडकरजी को सर्वप्रथम आर्यसमाज की खुली हवा में लानेवाले पं० आत्मारामजी को विशेष रूप से है।

कालान्तर में डॉ० बाबासाहब अम्बेडकरजी मुम्बई के ना० म० जोशी मार्ग पर स्थित क्रमांक ९८ के आर्यसमाज लोअर परल के समारोह में भी प्रमुख अतिथि के रूप में पधारे थे। (आर्यसमाज लोअर परल स्मरणिका १९८६-८७, पृष्ठ-१७)

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बड़ोदरा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़, कोल्हापुर नरेश श्री राजर्षि शाहू महाराज और आर्यविद्वान् पं० आत्मारामजी अमृतसरी के संयुक्त-समन्वित आर्योचित आचरण के माध्यम से सर्वप्रथम बाबासाहब अम्बेडकरजी को आर्यसमाज रूपी माँ की गोद मिली। महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज का वात्सल्य मिला। देव दयानन्द और आर्यसमाज की जीवन दृष्टि का उल्लेखनीय प्रभाव डॉ० अम्बेडकरजी के पूर्वार्द्ध पर स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। उत्तरार्द्ध में तो उन्होंने 'नास्तिको वेदनिन्दकः' का रूप धारण कर लिया था। सम्भवतः इसका कारण डॉ० अम्बेडकरजी की प्राच्य वैदिक दृष्टि से अनभिज्ञता और पाश्चात्य यूरोपीय दृष्टि से प्रभावित होना था।

मनुस्मृति विषयक दृष्टिकोण

डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर और उनके अनुयायियों द्वारा समय-समय पर यह प्रचारित किया जाता रहा है कि मनुस्मृति विषमतावादी ग्रन्थ है, पर आर्यसमाज और उसके अनुयायी मनुस्मृति को मानते हुए भी व्यावहारिक जीवन में समता और मानवतावाद के सशक्त पक्षधर के रूप में नजर आते हैं। इसका रहस्य यह है कि आर्यसमाज वेदानुकूल और प्रक्षिप्त विरहित विशुद्ध मनुस्मृति को मान्यता देता है। स्वयं महर्षि दयानन्द ने अपने विज्ञापनों में अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा है, **'मनुस्मृति को मनु का मत जानने के लिए देखता हूँ, उसको इष्ट समझकर नहीं'**--- **'सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं, उनको मैं मानता हूँ, विरुद्ध बातों को नहीं, इससे जो-जो मेरे बनाये 'सत्यार्थप्रकाश' वा 'संस्कार विधि' आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र' वा 'मनुस्मृति' आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिए लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध**

को अप्रमाण मानता हूँ। (ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन–प्रथम भाग : सम्पादक–पं भगवद्दत्त बी० ए० : प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट–रेवली, सोनीपत, (हरियाणा) संस्करण–नवम्बर १९८०। पृष्ठ–१५४)।

पं० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार और डॉ० अम्बेडकर

प्रतीत होता है आर्यसमाज के कतिपय वैदिक विद्वानों ने विचारशील विद्वान् माननीय डॉ० अम्बेडकरजी को बौद्धमत से वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट करने का समय–समय पर प्रयास किया। इसी उद्देश्य से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सहायक मन्त्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पतिजी (स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्तण्ड—१९०१–१९७८) ने सन् १९५२ (संवत्–२००८) में "**बौद्धमत और वैदिक धर्म : तुलनात्मक अनुशीलन**" नामक २३० पृष्ठों का ग्रन्थ भी लिखा था।



इसके अतिरिक्त इसी उद्देश्य से अनेक बार उन्होंने माननीय डॉ० अम्बेडकरजी से वार्तालाप भी किया था। २७ फरवरी १९५४ की रात को 'आस्तिकवाद' विषय पर माननीय डॉ० अम्बेडकरजी से उन्हीं के १–हार्डिग्ज ऐवेन्यू, नई दिल्ली के बंगले में पं० धर्मदेवजी की बात हुई थी। डॉ० अम्बेडकरजी से हुई बातचीत को उन्होंने 'सार्वदेशिक' जुलाई १९५१ के अंक में भी प्रकाशित किया था। इससे पूर्व १२ मई १९५० को भी पं० धर्मदेवजी की माननीय डॉ० अम्बेडकरजी से बातचीत हुई थी। डॉ० अम्बेडकरजी ने कलकत्ता की '**महाबोधि सोसाइटी**' के अंग्रेजी मासिक पत्र 'महाबोधि' के अप्रैल–मई १९५० के अंक में '**बुद्धा एण्ड द फ्यूचर ऑफ हिज रिलीजन**' नामक एक प्रदीर्घ लेख लिखा था। जिसे पढ़कर, पं० धर्मदेवजी ने '**बौद्धमत और वैदिक धर्मः तुलनात्मक अनुशीलन**' नामक ग्रन्थ लिखा था। अब यह दुर्लभ ग्रन्थ घुमक्कड़ धर्मी आचार्य नन्दकिशोरजी, इतिहासवेत्ता प्रा० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' वानप्रस्थी तथा प्रभाकरदेवजी आर्य के अनथक प्रयासों से सुलभ

हो गया है।

डॉ० डी० आर० दास (पं० उत्तममुनि जी वानप्रस्थी) ने इस लेखक को बतलाया था कि—माननीय डॉ० अम्बेडकरजी ने पं० धर्मदेव जी से कहा था—एक माँ अपने बच्चे को जैसे समझाती है, उस वात्सल्य भाव से आपने मुझे वैदिक धर्म समझाने का प्रयास किया है, पर मैं क्या करूँ, हिन्दुओं की मानसिकता मुझे बदलती हुई प्रतीत नहीं होती। उनका स्वभाव कठमुल्लाओं की तरह प्रतिगामी हो गया है।

डॉ० बालकृष्ण और डॉ० अम्बेडकर



सुविख्यात अनुसंधाता विद्वान् एवं इतिहासज्ञ प्राध्यापक श्री, राजेन्द्रजी जिज्ञासु ने 'आर्यसमाज और डॉ० भीमराव अम्बेडकर' नामक अनुसंधान पुस्तक के प्राक्कथन में १६ जुलाई २००० को जब यह लिखा था कि—'महाराष्ट्र में शिक्षा का प्रसार, अस्पृश्यता निवारण और जन-जागृति के आन्दोलन में आर्य विद्वान् डॉ० बालकृष्णजी का भी अद्भुत योगदान रहा है और उनके व्यक्तित्त्व और सेवाओं की छाप भी डॉ० अम्बेडकरजी पर रही हैं,' तब मुझे डॉ० बालकृष्ण और डॉ० अम्बेडकर के आपसी सम्बन्धों के विषय में यत्किञ्चित् भी जानकारी नहीं थी। हाँ, इन सम्बन्धों को जानने की जिज्ञासा प्रा० जिज्ञासु जी के प्राक्कथन के कारण ही उत्पन्न हुई।

महाराष्ट्र आर्य लेखक संघ के अध्यक्ष व आर्यसमाज रामनगर लातूर के मन्त्री श्री ज्ञानकुमारजी आर्य से जब मैंने डॉ० बालकृष्णजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में जानकारी चाही, तो उन्होंने मुझे उनके ग्रन्थालय में उपलब्ध '**डॉ० बालकृष्ण चरित्र कार्य व आठवणी**' नामक ग्रन्थ की फोटोस्टेट प्रति ७ जून २००२ को उपलब्ध करा दी। सबसे पहले इसी ग्रन्थ से प्रा० जिज्ञासुजी के डॉ० बालकृष्ण और डॉ० अम्बेडकर विषयक उपरोक्त कथन को पुष्ट करनेवाली प्रामाणिक और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हुई।

डॉ० बालकृष्णजी के देहावसान के दो वर्ष बाद कोल्हापुर आर्यसमाज और डॉ० बालकृष्ण स्मारक समिति के तत्त्वावधान में सम्पादक श्री मो० रा० वाळंबे ने यह ३०८ पृष्ठ का ग्रन्थ सम्पादित किया है। जिसमें २२ लेख मराठी में, १५ लेख इंग्लिश में और २ लेख हिन्दी में हैं। ग्रन्थ के मराठी शीर्षक के अन्त में आये 'आठवणी' शब्द का अर्थ संस्मरण और यादें है।

कोल्हापुर के श्री विष्णु बळवंत शेंडगे ने 'हम दलितों के पक्षधर' (मराठी शीर्षक—आम्हा हरिजनांचे कैवारी) नामक लेख में लिखा है, श्री छत्रपति शाहू महाराज ने अपनी राजधानी कोल्हापुर में सन् १९१८ में आर्यसमाज की स्थापना की थी। सन् १९२२ से डॉ० बालकृष्ण ने आर्यसमाज कोल्हापुर के प्रधान के रूप में कार्य करना शुरु किया था। १९२२ से लेकर लगभग १९४० तक उन्होंने आर्यसमाज के माध्यम से दलितोद्धार का जो उज्ज्वल कार्य किया, वह अविस्मरणीय है। डॉ० बालकृष्ण साहब के अन्त:करण में दलितों के प्रति अतिशय आत्मीयता और सहानुभूति थी। उनकी सर्वांगीण उन्नति के लिए डॉ० साहब ने अपनी ओर से बहुत से प्रयास स्वयं किये ही, अन्यों से भी इस क्षेत्र में जितना कार्य वे करवा सकते थे, उतना उन्होंने करवाया। दलितों के महान् व विद्वान् नेता डॉ० अम्बेडकर व डॉ० बालकृष्ण साहब का आपस में अत्यन्त घनिष्ठ व स्नेहिल सम्बन्ध था (पृष्ठ १९९)। डॉ० अम्बेडकर (१८९१–१९५६) से डॉ० बालकृष्ण (१८८२–१९४०) आयु में नौ वर्ष बड़े थे। दोनों ही अर्थशास्त्र तथा इतिहास के विद्वान्, उत्तम वक्ता और लेखक थे।

डॉ० बालकृष्ण और डॉ० अम्बेडकर के इन घनिष्ठ सम्बन्धों की पुष्टि कालान्तर में श्री चांगदेव भवानराव खैरमोडे लिखित श्री भीमराव अम्बेडकर नामक चरित्र ग्रन्थ से हुई। लेखक ने यह ग्रन्थ डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर के जीवनकाल में ही अनेक खण्डों में लिखा था। लेखक को लगभग पन्द्रह साल तक डॉ० अम्बेडकरजी के सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। वे अपने इस चरित्र के द्वितीय खण्ड में प्रसंगवशात् डॉ० अम्बेडकर और डॉ० बालकृष्ण से सम्बन्धित घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

सन् १९२७ में मुम्बई क्षेत्र में तीन शासकीय रिक्त स्थानों

की पूर्ति की जानी थी। इस जगह के लिए संस्कृत विषय लेकर बी०ए० ऑनर्स की उपाधि प्राप्त करनेवाले पहले महाराष्ट्रीय दलित (महार) युवक श्री मा० का० जाधव ने भी प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया था। जब वे बी०ए० उत्तीर्ण हुए तब डॉ० अम्बेडकर ने पत्र लिखकर उनका अभिनन्दन तो किया ही था, इसके अतिरिक्त दीक्षान्त समारोह के अवसर पर पहिनने के लिए उन्होंने अपना वकालत का चोगा भी उन्हें प्रदान किया था। स्वयं डॉ० बाबासाहब अम्बेडकरजी ने ही राजाराम कॉलेज कोल्हापुर के प्रिंसिपल डॉ० बालकृष्णजी को कहकर उनके कॉलेज में श्री जाधव की फॅलो के रूप में नियुक्ति भी करवाई थी। इस स्थान पर कार्य करते समय ही श्री जाधव ने मुम्बई की शासकीय सेवा हेतु अपना प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया था, पर मुम्बई सरकार ने दो रिक्त स्थानों पर मराठा समुदाय के लोगों की नियुक्ति की थी और तीसरे स्थान एक मुसलमान व्यक्ति की नियुक्ति कर दी गई थी। डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर ने इस बात पर खेद व्यक्त करते हुए कहा था कि—मुसलमान उम्मीदवार के सामान्य बी०ए० होने पर भी मुम्बई सरकार ने उसकी नियुक्ति कर दी और दलित प्रत्याशी के बी० ए० ऑनर्स होने पर भी उसकी नियुक्ति नहीं की गई। डॉ० बाबासाहब ने तत्काल इस सरकार की कार्यवाही पर अपनी टिप्पणी व्यक्त करते हुए इसे दलित प्रत्याशी पर सरासर अन्याय घोषित किया था।

तत्युगीन समाज में जब केवल अशिक्षित दलितों पर ही नहीं, किन्तु शिक्षित दलितों पर भी इस प्रकार के अन्याय हो रहे थे, तब प्राचार्य डॉ० बालकृष्णजी द्वारा दलित स्नातक को आर्यसमाजी शिक्षण संस्था राजाराम महाविद्यालय कोल्हापुर में संस्कृत फॅलो के रूप में नियुक्ति प्रदान करना, अपने आपमें विशेष महत्त्व रखता है। प्राचार्य डॉ० बालकृष्णजी का आर्योचित व्यवहार देखकर डॉ० अम्बेडकरजी का मन सुनिश्चित रूप से गद्‌गद् हुआ होगा। डॉ० अम्बेडकरजी ने आर्य विद्वान् और आर्य शिक्षण संस्था की जैसी प्रशंसा सुनी थी, तदनुरूप ही उन्हें व्यावहारिक जीवन में मानवोचित सदाचरण करते हुए पाया। **मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।** मनसा-वाचा-कर्मणा आचार्य-महात्माओं का आचरण अभिन्न-एकरूप होता है।

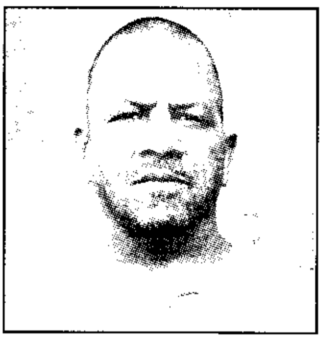
उपरोक्त घटना के समय सन् १९२७ में प्राचार्य डॉ० बालकृष्णजी की आयु ४५ वर्ष और बाबासाहब डॉ० अम्बेडकरजी की आयु ३६ वर्ष की थी। कोल्हापुर जाकर समकालीन व्यक्तियों से मिलने पर अथवा समकालीन साहित्य के अध्ययन के उपरान्त कालान्तर में डॉ० बालकृष्ण और डॉ० अम्बेडकर के आत्मीय सम्बन्धों की और भी अधिक विस्तार से जानकारी उपलब्ध हो सकती है। प्रा० श्री राजेन्द्रजी जैसे इतिहासज्ञ इस विषय पर और अधिक विस्तार से प्रकाश डाल सकते हैं। '**हम दलितों के पक्षधर**' के लेखक श्री० वि० ब० शेंडगे के शब्दों में 'अपने जीवन के अंतिम क्षण तक डॉ० बालकृष्णजी आर्यसमाज की ओर से दलितोद्धार के लिए अविश्रांत और अनथक संघर्ष करते रहे थे' (पृष्ठ २००)।

डॉ० बालकृष्ण के कोल्हापुर में सक्रिय आर्यसमाज का होना अत्यावश्यक

कोल्हापुर के राजा छत्रपति शाहूजी महाराज पर आर्यसमाज का प्रभाव पड़ा। उन्होंने कोल्हापुर का राजाराम कॉलेज संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा को सौंप दिया। सभा ने कॉलेज के प्राचार्य पद के लिए विख्यात आर्य विद्वान् डॉ० बालकृष्णजी को भेजा। वे कोल्हापुर के ही हो गये। उन्होंने वहाँ वैदिक धर्म प्रचार की धूम मचा दी। सहस्रों व्यक्ति शुद्ध होकर आर्य धर्म में दीक्षित हुए। डॉ० बालकृष्ण, डॉ० अविनाशचन्द्र बोस, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि के प्रयत्नों से अस्पृश्यता व जन्म की जात-पाँत की जड़ें उखड़ने लगीं। खेद की बात है जिस कोल्हापुर में बालकृष्ण जैसे यशस्वी शिक्षा शास्त्री, गवेषक लेखक, इतिहासज्ञ और प्रारंभिक काल में महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी पर अंग्रेजी में प्रामाणिक जीवन चरित्र लिखनेवाले चरित्रकार ने जीवन खपाया, वहाँ अब सक्रिय आर्यसमाज नहीं। आर्यसमाज की लाखों के भवन हैं, परन्तु आर्यों के हाथ में कुछ भी नहीं। किसी समय कोल्हापुर से हिन्दी-मराठी तथा अंग्रेजी में आर्यसमाज सम्बन्धी बहुत सारा साहित्य निकला था। (व्यक्ति से व्यक्तित्त्व—प्रा० राजेन्द्रजी जिज्ञासु—पृष्ठ १०५-१०७)।

स्वामी वेदानन्द तीर्थ और डॉ० अम्बेडकर

'स्वाध्याय-सन्दोह' के लेखक स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ (१८९२-१९५६) ने भी अपनी पुस्तक 'राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन' (१९५०) का प्राक्कथन डॉ० बी० आर० अम्बेडकर से इसी उद्देश्य से लिखवाया था कि इस पुस्तक को पढ़कर डॉ० अम्बेडकरजी बौद्ध धर्म से विमुख होकर वैदिक धर्म की ओर उन्मुख हो जाएँगे। उक्त पुस्तक के डॉ० अम्बेडकरजी लिखित प्राक्कथन को पढ़कर लगता है कि उन्हें उक्त चर्चित पुस्तक ने प्रभावित तो किया, पर वे इससे पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हुए। उनके द्वारा बहुत ही सतर्कता के साथ लिखा हुआ प्राक्कथन इस प्रकार है—



''स्वामी वेदानन्द तीर्थ की इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने के लिए मुझे प्रेरणा की गई। कार्यभार के कारण मैं लेखक की प्रार्थना स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट करता रहा, किन्तु मेरे द्वारा कतिपय शब्द लिखने के लिए लेखक का अनुरोध निरन्तर रहा, अत: मुझे लेखक का अनुरोध स्वीकार करना ही पड़ा। लेखक की स्थापना यह है कि स्वतन्त्र भारत वेद प्रोक्त शिक्षा को अपने धर्म के रूप में अंगीकार करे। यह शिक्षा सम्पूर्ण वेदों में विभिन्न स्थलों पर निर्दिष्ट है और इसका लेखक ने इस पुस्तक में संकलन कर दिया है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह पुस्तक भारत का धर्मग्रन्थ बन जाएगी, किन्तु यह मैं अवश्य कहता हूँ कि यह पुस्तक पुरातन आर्यों के धर्मग्रन्थों से संकलित उद्धरणों का केवल अद्भुत संग्रह ही नहीं है, प्रत्युत यह चमत्कारिक रीति से उस विचारधारा तथा आचार की शक्ति को प्रकट करती है, जो पुरातन आर्यों को अनुप्राणित करती थीं। पुस्तक प्रधानतया यह प्रतिपादित करती है कि पुरातन आर्यों में उस निराशावाद (**दु:खवाद**) का लवलेश भी नहीं था, जो वर्तमान हिन्दुओं में प्रबल रूप से छाया हुआ है।'' प्राक्कथन के अन्तिम परिच्छेद में वे पुन: लिखते हैं। 'पुस्तक की उपयोगिता

और भी अधिक बढ़ जाती यदि लेखक महोदय यह दर्शाने का प्रयत्न करते कि प्राचीन भारत के सत्ववाद तथा आशावाद को उत्तरकाल के निराशावाद ने कैसे पराभूत कर दिया ? मुझे आशा है कि लेखक इस समस्या की किसी अन्य समय पर विवेचना करेंगे। तथापि इस समय हमारे ज्ञान में यह कोई अल्प (नगण्य) वृद्धि नहीं है कि मायावाद (संसार को माया मानना) नवीन कल्पना है। इस दृष्टि से मैं इस पुस्तक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।'

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय और डॉ० अम्बेडकर



श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय (१८८१-१९६८) ने डॉ० अम्बेडकरजी को विद्वान् तर्कशील, उत्तम लेखक तथा वक्ता स्वीकार करते हुए लिखा है— "**श्री अम्बेडकरजी को प्रथम शरण तो आर्यसमाज में ही मिली थी।**" आर्यसमाज में दलितों का प्रवेश पचास वर्ष से चला आया था। महादेव गोविन्द रानाडे के सोशल कांफ्रेस में अधिकतर आर्यसमाजियों का सहयोग रहता था। आर्य नेता तथा सहस्त्रों आर्यसमाजी दलितोद्धार में लगे हुए थे। भेद केवल उद्योग और साफल्य की मात्रा का था। श्री अम्बेडकरजी स्वभाव से हथेली पर सरसों जमानेवाले व्यक्तियों में से हैं। उनको मनचाही चीज़ तुरन्त मिले, अन्यथा वह दल परिवर्तन कर देते हैं।" इस धारणा के बाद भी आर्य विद्वान् पं० गंगाप्रसादजी माननीय डॉ० अम्बेडकर जी द्वारा प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल के पक्षधर थे। बात उस समय की है जब गंगाप्रसाद उपाध्याय आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान (१९४१-१९४७) थे। तब काशी के कुछ पण्डितों ने आर्यसमाज इलाहाबाद चौक पधारकर उनसे कहा, 'विदेशी सरकार हिन्दुओं के धर्म को भ्रष्ट करने के लिए हिन्दू कोड बिल पास करना चाहती है। आर्यसमाज हिन्दू संस्कृति का सदा से रक्षक रहा है। हम चाहते हैं कि इसके विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन चलाया जाए और आर्यसमाज इस सांस्कृतिक युद्ध में हमारा पूरा सहयोग करे।'

काशी के पण्डितों के उपरोक्त अनुरोध को सुनकर उपाध्यायजी ने कहा—'जब तक मैं 'बिल' का पूरा अध्ययन न कर लूँ और अपने मित्रों से बिल के गुण-दोषों पर परामर्श न कर लूँ, मेरे लिए यह कहना कठिन होगा कि आर्यसमाज आपको कहाँ तक सहयोग दे सकेगा?---शायद आर्यसमाज इस दृष्टिकोण से आपसे सहमत न हो, क्योंकि आर्यसमाज एक सुधारक संस्था है और हिन्दू पण्डितों की सदैव से एक मनोवृत्ति रही है, वह यह कि सुधार के काम में रोड़ा अटकाना। हिन्दू समाज मरणासन्न हो रहा है। आप स्वयं चिकित्सा का उपाय नहीं सोचते और दूसरों को रोगी के समीप तक फटकने नहीं देते। आर्यसमाज को अपने जन्म से अब तक यही कटु अनुभव हुआ है। बाल-विवाह-निषेध (१९२९) के कानून में आपने विरोध किया। अनुमति कानून (consentbill) जैसे अत्यावश्यक कानून के पास होते समय भी यही आवाज आई कि विदेशियों और विधर्मियों को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं, आर्यसमाज अपने सुधार में हरेक उचित साधन का प्रयोग करता रहा और एक अंश में आप भी विदेशी सरकार से पीछा नहीं छुड़ा सके, आप अपनी आत्म-रक्षा के लिए विदेशी सरकार की कचहरियों, पुलिस, सेना आदि का प्रयोग करते रहे हैं।

हिन्दू कोड बिल का अध्ययन करने के उपरान्त पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि—हिन्दू कोड बिल का विरोध, बिना सोचे समझे सनातन धर्म के ठेकेदारों की ओर से खड़ा किया गया है।



सार्वदेशिक सभा ने अपने प्रधान पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति (१८८९-१९६०) और मन्त्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के हिन्दू कोड बिल के अनुकूल होने के बावजूद केवल बहुमत के आधार पर सामूहिक रूप से हिन्दू कोड बिल का विरोध करने का निर्णय ले लिया था।

सार्वदेशिक सभा के उपरोक्त निर्णय

पर अपना तीव्र असन्तोष व्यक्त करते हुए भी उपाध्यायजी ने लिखा था। 'आर्यसमाज ने यह विरोध करके अपना नाम बदनाम कर लिया। अब---(इस सन्दर्भ में)---आर्यसमाज का नाम सुधारक---संस्थाओं की सूची से काट दिया जाएगा---अधिकांश आर्यसमाजियों ने भी सनातनियों का साथ देकर उनके ही सुर में सुर मिलाया, जो मेरे विचार से सर्वथा अनुचित, निरर्थक तथा आर्यसमाज की उन्नति के लिए घातक था।'

श्री उपाध्यायजी की दृष्टि में हिन्दू कोड बिल 'पौराणिक और वैदिक धर्म' के बीच एक ऐसी चीज़ थी, जो आर्यसमाज के अधिक निकट और पौराणिकता से अधिक दूर है, अर्थात् इसका झुकाव आर्यसमाज की ओर है। आर्यसमाज को इसकी सहायता करनी चाहिए थी, उसने उसका विरोध करके पौराणिक कुप्रथाओं को जीवित रखने में सहायता दी।

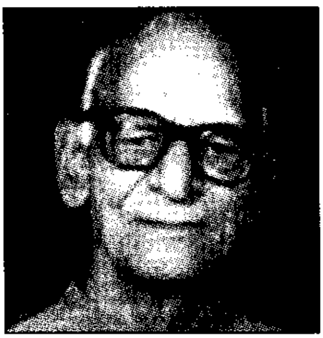
श्री उपाध्याय जी का यह मन्तव्य था कि—'**चाहे फल कुछ भी हो, आर्यसमाज को किसी अवस्था में भी सुधार के विरोधियों का साथ देकर सुधार-विरोधिनी मनोवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए था। मैं हारूँ या जीतूँ, मुझे कहना तो वही चाहिए, जो सत्य है।**'

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय सार्वदेशिक सभा के मन्त्री (१९४६-१९५१) होते हुए भी आर्यसमाजियों को हिन्दू कोड बिल के सन्दर्भ में अपने अनुकूल करने में असमर्थ रहे। पुनरपि उन्होंने आर्यसमाज की इस सनातनी प्रवृत्ति की परवाह न करते हुए, माननीय डॉ० अम्बेडकरजी के '**हिन्दू कोड बिल**' के अनुकूल ही कई स्थानों पर व्याख्यान दिये। श्री उपाध्यायजी के अनुसार यह भ्रामक और राजनीति प्रेरित प्रचार था कि—हिन्दू कोड बिल—१. भाई-बहिन के विवाह (सगोत्र विवाह) को विहित ठहराता है। २. तलाक चलाना चाहता है और ३. पुत्रियों को जायदाद में हक दिलाकर हिन्दुओं के पारिवारिक जीवन को नष्ट करना चाहता है।[१६]

हमें इस बात की जानकारी नहीं है, माननीय डॉ० अम्बेडकर और पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय की कभी प्रत्यक्ष भेंट हुई या नहीं, श्री उपाध्यायजी द्वारा लिखे १. अछूतों का प्रश्न, २. 'हिन्दूजाति

का भयंकर भ्रम', ३. 'दलित जातियाँ और नया प्रश्न', ४. 'हिन्दुओं का हिन्दुओं के साथ अन्याय', ५. डॉ० अम्बेडकर की धमकी आदि सम-सामयिक प्रचारार्थ लिखी गई लघु पुस्तिकाओं से सम्भवतः इन सब बातों पर और अधिक प्रकाश पड़े। हिन्दू कोड बिल के सन्दर्भ में श्री उपाध्यायजी ने बड़ी तीव्रता से यह अनुभव किया था कि—'सनातनी मनोवृत्ति आर्यसमाज में प्रविष्ट हो चुकी है।' इस मनोवृत्ति को सन् १९२८ में ही डॉ० अम्बेडकरजी ने ताड़ लिया था और अपने एक लेख में लिखा था कि 'आज आर्यसमाज को सनातन धर्म ने निगल लिया है।'

पं० लक्ष्मीदत्त दीक्षित और डॉ० अम्बेडकर



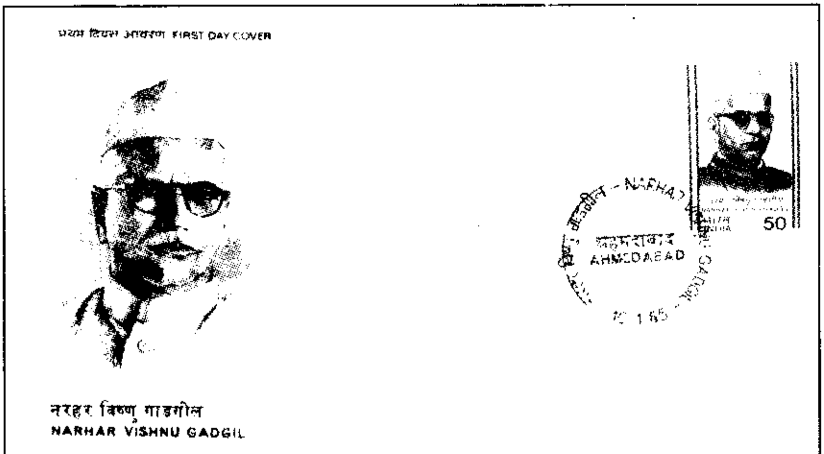
हिन्दू कोड बिल के सन्दर्भ में आर्यजगत् के एक शिरोमणि विद्वान् पं० लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित (स्वामी विद्यानन्द-जी सरस्वती—१९१५-२००३) डॉ० अम्बेडकरजी के सम्पर्क में आये थे। उनकी माननीय डॉ० अम्बेडकरजी से चार बार मुलाकात हुई थी। श्री लक्ष्मीदत्तजी उस समय दिल्ली के दरियागंज क्षेत्र में रहते थे, तो डॉ० अम्बेडकरजी की कोठी तिलक मार्ग पर थी। जब पं० दीक्षितजी की डॉ० अम्बेडकरजी से सर्वप्रथम भेंट हुई, तब माननीय डॉ० महोदय ने स्पष्ट किया, **'मेरा इस बात पर कोई आग्रह नहीं है कि हिन्दू समाज की एक आचार संहिता हो।'**

द्वितीय भेंट में माननीय डॉ० अम्बेडकरजी ने पं० दीक्षितजी से कहा—'सनातनधर्मियों के विरोध की मुझे चिन्ता नहीं, क्योंकि वे तो सदा से हर अच्छी बात का विरोध करते आये हैं और छह महीने से अधिक उनका विरोध चलता नहीं। आर्यसमाज से बात करने के लिए मैं हर समय तैयार हूँ, क्योंकि सब बातों में उससे सहमत न होते हुए भी मैं इतना तो मानता ही हूँ कि उसकी बात बुद्धिपूर्वक होती है।'

तीसरी बार जब पं० लक्ष्मीदत्तजी डॉ० अम्बेडकरजी से मिलने गए तो वे उन्हें एक बड़े कमरे में ले गये। जहाँ दूर-दूर तक मेजों पर

बड़ी-बड़ी पुस्तकें फैली हुई थीं और अनेक विद्वान्, जिनमें एक-दो संन्यासी भी थे, उनका अध्ययन कर रहे थे। माननीय डॉ० अम्बेडकर ने बतलाया कि जो लोग हिन्दू कोड बिल को हिन्दू धर्म का विरोधी कहते हैं, उनके सामने मैं इसकी एक-एक धारा के लिए हिन्दू शास्त्रों से दस-दस प्रमाण प्रस्तुत करूँगा, श्री दीक्षितजी के अनुसार 'डॉ० अम्बेडकर के लिए ऐसा करना कुछ कठिन नहीं था।'

पं० लक्ष्मीदत्तजी ने हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में देशभर के उच्च कोटि के ५०० हिन्दू विद्वानों और धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक नेताओं को एक परिपत्र भेजा था, जो कि जवाबी पोस्टकार्ड के रूप में था, जिसमें उन्होंने लिखा था—हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत हैं—१. उसके एक-एक अक्षर का विरोध किया जाए। २. उसके एक एक अक्षर का समर्थन किया जाए। ३. उस पर विचार करके उसमें जो अच्छी बातें हैं, उनका समर्थन और जो अनुचित हों, उनका विरोध किया जाए। साथ में संलग्न जवाबी कार्ड में तीनों मत उद्धृत कर विद्वानों से कहा गया कि जिससे सहमत हैं, उसे छोड़कर शेष दोनों को काट दें और अपने हस्ताक्षर करके लौटा दें।

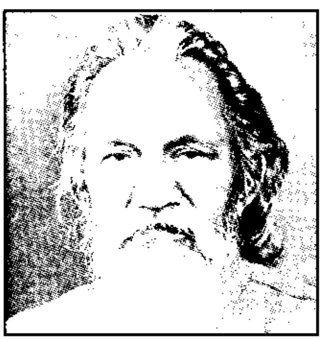


पाँच सौ में से लगभग तीन सौ व्यक्तियों ने उत्तर भेजे। उनमें से केवल एक केन्द्रीय मन्त्री श्री नरहर विष्णु गाडगिल ने बिल के एक-एक अक्षर का समर्थन किये जाने के पक्ष में अपना मत दिया, तो तत्कालीन हिन्दू महासभा के नेता श्री नारायण भास्कर

खरे ने इसके एक-एक अक्षर का विरोध किये जाने के पक्ष में अपनी सम्मति दी। शेष सब ने विचारोपरान्त उचित बातों का समर्थन करने तथा अनुचित का विरोध करने के पक्ष में अपना मत दिया। पं० लक्ष्मीदत्तजी ने उक्त समस्त विवरण डॉ० अम्बेडकरजी को भेज दिया।

सम्भवत: दिसम्बर १९४९ में हिन्दू कोड बिल लोक-सभा में प्रस्तुत किया गया। उस दिन लोकसभा की दर्शक दीर्घा खचाखच भरी हुई थी। श्री दीक्षितजी को उस दिन लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयंगर के प्रियजनों के लिए सुरक्षित कक्ष में स्थान मिल गया था। डॉ० अम्बेडकरजी ने पं० लक्ष्मीदत्त द्वारा संकलित उक्त विवरण **'हिन्दुस्तान टाइम्स'** को यथास्थान प्रकाशनार्थ दे दिया। जिस दिन हिन्दू कोड बिल लोकसभा में प्रस्तुत हुआ। ठीक उसी दिन वह विवरण 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित हुआ। समाचार पत्र का तीसरा पृष्ठ पं० लक्ष्मीदत्तजी के वक्तव्य से भरा पड़ा था।[१७] इस प्रकार विद्वानों के मत संकलन और उसके प्रकाशन-प्रसारण के सिलसिले में श्री लक्ष्मीदत्तजी की डॉ० अम्बेडकरजी से चौथी मुलाकात हुई थी।

पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी का परामर्श



सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन का सातवाँ अधिवेशन २७ अक्टूबर से १० नवम्बर १९५१ तक ऋषि निर्वाण के अवसर पर मेरठ नगर में आयोजित किया गया था। उसका स्वरूप क्या हो इस विषय पर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु (१८९२-१९६४) ने वेदवाणी मासिक, वर्ष ४, अंक-१ में विस्तृत लेख लिखा था।

जिसमें श्री जिज्ञासुजी ने डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल पर अपनी राय आर्यसमाज को प्रस्तुत करने का आग्रह करते हुए लिखा था, "हिन्दू कोड बिल पर आर्यसमाज ने कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की, अब तो यह विचारार्थ उपस्थित भी हो रहा है। मेरे विचार में इस विषय में अवश्य ही निश्चित घोषणा करनी

चाहिए। आर्यसमाज को इस कोड बिल की एक-एक धारा को लेकर एक-एक पर अपनी धारणा घोषित करनी चाहिए थी, अब भी करनी चाहिए। जितना अंश ग्राह्य हो, उस पर ग्राह्यता की मोहर लगावें। यदि उसमें कुछ परिवर्तन वा परिवर्धन की आवश्यकता हो, तो भी एक बार इस विषय में निश्चित रूप निर्धारित कर उसकी घोषणा करनी उचित है, घसड़-पसड़ ठीक नहीं''---

''हिन्दू कोड बिल पर अपना विचार निःसंकोच स्पष्ट देवें।''

हिन्दू कोड बिल अपने मूल रूप में यथासमय पारित नहीं हो पाया। १९५६ में वह बिल संशोधित रूप में आया और दो हिस्सों में बंटकर **''हिन्दू मैरिज एक्ट (हिन्दू विवाह अधिनियम) और हिन्दू सक्सेशन एक्ट (उत्तराधिकार अधिनियम)''** के नाम से पास हो गया।

पं० शिवपूजनसिंह और डॉ० अम्बेडकर

महाराष्ट्र प्रान्तीय विदर्भ अञ्चल के वाशिम जनपद में स्थित कारंजा (लाड़) के ठाकुर रामसिंहजी आर्य के सौजन्य से आर्यसमाज कारंजा का प्राचीन ग्रन्थालय देखने का सौभाग्य १० जून २००१ को प्राप्त हुआ। ग्रन्थालय में आर्यसमाज की अनेक दुर्लभ प्रतियाँ सँजोकर रखी हुई थीं। इन्हीं अङ्कों में जुलाई-अगस्त १९५१ के सार्वदेशिक मासिक के अङ्क भी शामिल थे, जिसमें कानपुर के वैदिक गवेषक श्री शिवपूजनसिंह का डॉ० अम्बेडकरजी के वेदादि-विषयक विचारों की समीक्षा में लिखा हुआ 'भ्रान्ति निवारण' नामक लेख भी था। यह लेख ५४ उद्धरणों से समृद्ध, बौद्धिक और विचारात्मक था, अतः उसे यात्रा में तत्काल न पढ़कर यथावकाश पढ़ने का विचार कर सुरक्षित रख दिया।

हमारी 'आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर' विषयक पुस्तिका इससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। अब २००८ में जब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करने की चर्चा चली तो मुझे श्री शिवपूजनसिंह कुशवाह के उपरोक्त लेख का स्मरण हो आया। कागजों के अम्बार में 'खोई हुई वस्तु की खोज' में लगा तो अनथक प्रयास से चर्चित लेख हाथ लग पाया और दिनाङ्क २६ अप्रैल २००८ को उसे प्रथम बार पढ़ने के उपरान्त मन गद्गद् हो गया।

अन्तर्मन को प्रसन्न करनेवाला इस लेख का वह स्थल था

जहाँ लेखक ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि विद्वद्वर्य पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति सिद्धान्तालङ्कार सम्पादक सार्वदेशिक से डॉ० अम्बेडकर महोदय ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे 'शूद्रों की खोज' ग्रन्थ के अग्रिम अंग्रेजी संस्करण से उस भाग को हटवा देंगे, जो उन्हें आक्षेपार्ह प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक पं० सोहनलालजी शास्त्री महोदय को भी डॉ० अम्बेडकर महोदय ने कहा था कि 'हिन्दी संस्करण से भी वह आक्षेपार्ह अंश निकाल दिया जाए।'

यहाँ अंग्रेजी–हिन्दी संस्करण से जिस भाग या अंश को हटा देने की बात चल रही है, उसे हमने 'आर्यसमाज और डॉ० अम्बेडकर' के प्रथम संस्करण की पादटिप्पणियों में १२वें क्रमाङ्क पर उद्धृत किया था। इस अंश की ओर हमारा विशेष ध्यान मनुस्मृति के भाष्यकार प्रा० डॉ० सुरेन्द्रकुमारजी (हरियाणा) तथा डॉ० ब्रह्ममुनिजी वानप्रस्थ (महाराष्ट्र) ने भी दिलाया था। 'शूद्रों की खोज' ग्रन्थ की प्रस्तावना में प्रकाशित वह अंश इस प्रकार है—

"यह पुस्तक आर्यसमाज मत के विरुद्ध है। यह विरोध दो आवश्यक बातों में है। १. आर्यसमाजियों का यह विश्वास है कि आर्यों में चार वर्ण आदि से कायम हैं। लेकिन प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पहले भारतीय आर्यों में सिर्फ तीन ही वर्ण थे। २. आर्यसमाजियों का विश्वास है कि वेद अनादि और ईश्वरकृत हैं, परन्तु इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है कि वेदों का पुरुष सूक्त ब्राह्मणों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पीछे से जोड़ा है। ये दोनों बातें आर्यसमाजी सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। मुझे आर्यसमाजियों का इसलिए विरोध करने में हिचक नहीं है, क्योंकि उन्होंने हिन्दू समाज में भ्रान्ति का प्रचार किया है। उनका यह प्रचार कि वेद अनादि, अनन्त और अभ्रान्त हैं, अतः वेदों के आधार पर जो सामाजिक संस्थाएँ, वर्णव्यवस्था आदि बनी हैं, वे भी अनादि, अनन्त और अभ्रान्त हैं, ऐसे विश्वास को फैलाना समाज का सबसे बड़ा अनहित है। जब तक यह सिद्धान्त कायम है, हिन्दू समाज कभी सुधार की ओर नहीं जा सकता।"

पं० शिवपूजनसिंह के अनुसार डॉ० अम्बेडकरजी के 'शूद्रों

की खोज' ग्रन्थ से उपरोक्त अंश को निकालने के निर्देशों का प्रकाशकों ने उल्लङ्घन कर दिया जो अत्यन्त निन्दनीय बात है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि अपनी बात से टस से मस न होनेवाले, अपने लेख से अल्पविराम को भी कम न करनेवाले डॉ० अम्बेडकर जैसे सुहृद् व्यक्ति क्या अपनी बात को कभी पीछे ले सकते हैं? हम उन्हें यही कहना चाहते हैं कि—डॉ० अम्बेडकरजी प्रकाण्ड विद्वान् थे और अपने से प्रतिकूल सिद्धान्त से सहमत होनेपर वे उसे स्वीकार कर लेते थे। जान-बूझकर खारे जल का पानी पीना उन्हें पसन्द नहीं था। स्वामी वेदानन्द तीर्थ लिखित 'राष्ट्र-रक्षा के वैदिक साधन' की प्रस्तावना में डॉ० अम्बेडकरजी ने यह स्वीकार किया है कि—'मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह पुस्तक भारत का धर्मग्रन्थ बन जाएगी, किन्तु यह मैं अवश्य कहता हूँ कि यह पुस्तक पुरातन आर्यों के धर्मग्रन्थों से सङ्कलित उद्धरणों का केवल अद्भुत संग्रह ही नहीं है, प्रत्युत यह चमत्कारिक रीति से उस विचारधारा तथा आचार शक्ति को प्रकट करती है, जो पुरातन आर्यों को अनुप्राणित करती थीं। पुस्तक प्रधानतया यह प्रतिपादित करती है कि पुरातन आर्यों में उस निराशावाद (दु:खवाद) का लवलेश भी नहीं था, जो वर्त्तमान हिन्दुओं में प्रबलरूप से छाया हुआ है। इस समय हमारे ज्ञान में यह कोई अल्प (नगण्य) वृद्धि नहीं है कि मायावाद (संसार को माया मानना) नवीन कल्पना है। इस दृष्टि से मैं इस पुस्तक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।'

डॉ० अम्बेडकरजी और पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार में आपस में जो सैद्धान्तिक चर्चा हुई उसे पाठक 'बौद्धमत और वैदिकधर्म का तुलनात्मक अनुशीलन' ग्रन्थ में विस्तार से पढ़ सकते हैं। यहाँ मैं केवल उस बात को प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो मुझे महाराष्ट्र के वयोवृद्ध उपदेशक पं० उत्तममुनिजी वानप्रस्थी ने कही थी। वह यह कि—'एक बार पं० धर्मदेवजी ने हमसे कहा था कि—'माननीय डॉ० अम्बेडकरजी ने हमारा कथन सम्पन्न होने के उपरान्त यह कहा कि —'एक माँ अपने बच्चे को जैसे समझाती है, उस वात्सल्यभाव से आपने मुझे वैदिकधर्म समझाने का प्रयास किया है, पर मैं क्या करूँ, इन हिन्दुओं की मानसिकता मुझे

बदलती हुई प्रतीत नहीं होती। उनका स्वभाव कठमुल्लाओं की तरह प्रतिगामी हो गया है।' प्रा० डॉ० महेन्द्रदास ठाकुर के अनुसार डॉ० अम्बेडकर स्वयं आर्यसमाज में दलितों के साथ प्रवेश करने का मन बना चुके थे, लेकिन हिन्दू महासभा तथा आर्यसमाज की निकटता को देख वे बुद्ध दीक्षा की ओर मुड़े। (लेख—वह तूफान साथ लिए चलता था ''वैदिक गर्जना''—पं० नरेन्द्र स्मृति विशेषाङ्क मार्च-अप्रैल २००८, पृष्ठ ५३)। स्मरण रहे सैद्धान्तिक स्तर पर डॉ० अम्बेडकर वर्णव्यवस्था को नहीं मानते थे, फिर भी उन्होंने यह स्वीकार किया था कि—'महात्मागाँधी की जन्मना वर्णव्यवस्था की तुलना में स्वामी दयानन्द सरस्वती की कर्मणा वर्णव्यवस्था बुद्धिगम्य और निरुपद्रवी है।'

माननीय डॉ० अम्बेडकरजी पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार के प्रति अत्यन्त ही सम्मानभाव रखते थे। इस तथ्य का पता इस बात से चलता है कि उन्होंने अपने विधि मन्त्री के काल में भारत सरकार के विधि मन्त्रालय की ओर से 'हिन्दू कोड़ बिल तथा उसका उद्देश्य' नामक २०४ पृष्ठों का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था, जिसमें पं० धर्मदेवजी द्वारा लिखित दस लेखों की एक लेखमाला पृष्ठ ५६ से ११३ तक उद्धृत करते हुए डॉ० अम्बेडकरजी ने लिखा था—'वेदों के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति उन थोड़े से व्यक्तियों में हैं, जिनके जीवन का अधिकांश समय वेदों एवं आर्यों के अन्यान्य प्राचीन धर्मग्रन्थों के अनुशीलन और अनुसन्धान में बीता है। पिछले दिनों उनकी एक लेखमाला दिल्ली के सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने प्राचीन स्मृतियों, वेदों तथा शास्त्रों के प्रमाण एवं उद्धरण देकर हिन्दू बिल के विविध विधानों का सारगर्भित विवेचन किया है। विचारशील पाठकों के लिए 'वीर अर्जुन' की स्वीकृति से यह लेखमाला यहाँ पुन: प्रकाशित की जा रही है। (पृष्ठ ५६)

इस प्रदीर्घ प्रस्तावना के साथ प्रस्तुत है, श्री शिवपूजनसिंह लिखित 'भ्रान्ति निवारण' लेख का सार-संक्षेप, जिसमें डॉ० अम्बेडकरजी के वेदादि-विषयक विचारों की समालोचना की गई है। पूर्वपक्ष के रूप में डॉ० अम्बेडकरजी का वेदादि-विषयक

आक्षेप पक्ष पहले और वैदिक विद्वानों के चिन्तन पर आधारित श्री शिवपूजनसिंह का समाधान पक्ष बाद में साररूप में विवेकशील पाठकों के हितार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पं० शिवपूजनसिंह कुशवाहा गवेषणापूर्ण तथा उद्धरण प्रधान शैली के सुप्रसिद्ध लेखक के रूप में प्रख्यात थे। आपने अम्बेडकर लिखित 'अछूत कौन और कैसे'[१] तथा 'शूद्रों की खोज' नामक ग्रन्थों में माननीय डॉ० महोदय ने वैदिक विचारधारा पर जो आक्षेप किए हैं, उसका 'भ्रान्ति निवारण' शीर्षक से 'सार्वदेशिक' मासिक (जुलाई–अगस्त १९५१) के अङ्कों में समीक्षा की है। 'अछूत कौन और कैसे' ग्रन्थ के आठ मुद्दों और 'शूद्रों की खोज' ग्रन्थ के तीन मुद्दों को आपने समालोचना का विषय बनाया है। स्वाध्यायशील श्री शिवपूजनसिंह ने अपनी एक पुस्तक भी 'अथर्ववेद की प्राचीनता' भी पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति के द्वारा डॉ० अम्बेडकरजी की सेवा में भेजी थी। इस 'भ्रान्ति निवारण' लेख के अन्त में लेखक ने लिखा है—'आशा है आप मेरे प्रमाणों पर पूर्णरूप से विचारकर तदनुकूल अपने ग्रन्थ में संशोधन करेंगे।' इस निवेदन के साथ उन्होंने अपने समीक्षात्मक लेख को पूर्णविराम दिया है।

'अछूत कौन और कैसे' ग्रन्थ में माननीय डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्ष या आक्षेपों का श्री शिवपूजनसिंह ने 'भ्रान्ति निवारण' लेख में उत्तर पक्ष या समाधान पक्ष के रूप में जो निराकरण किया है, वह विवेकशील पाठकों के विचारार्थ संवादरूप में प्रस्तुत है—

डॉ० अम्बेडकर—आर्य लोग निर्विवादरूप से दो हिस्सों और दो संस्कृतियों में विभक्त थे, जिनमें से एक ऋग्वेदीय आर्य तथा दूसरे यजुर्वेदीय आर्य थे, जिनके बीच बहुत बड़ी सांस्कृतिक खाई थी। ऋग्वेदीय आर्य यज्ञों में विश्वास करते थे, अथर्ववेदीय जादू-टोने में।

पं० शिवपूजनसिंह—दो प्रकार के आर्यों की कल्पना केवल आपके और आप-जैसे कुछ मस्तिष्कों की उपज है। यह केवल कपोल-कल्पना या कल्पना विलास है। इसके पीछे कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। कोई ऐतिहासिक विद्वान् भी इसका

समर्थन नहीं करता। अथर्ववेद में किसी भी प्रकार का जादू-टोना नहीं है।[१]

डॉ० अम्बेडकर—ऋग्वेद में आर्यदेवता इन्द्र का सामना उसके शत्रु अहि-वृत्र (साँप-देवता) से होता है, जो कालान्तर में नागदेवता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पं० शिवपूजनसिंह—वैदिक और लौकिक संस्कृत में आकाश-पाताल का अन्तर है। यहाँ इन्द्र का अर्थ सूर्य और वृत्र का अर्थ मेघ है। यह संघर्ष आर्यदेवता और नागदेवता का न होकर सूर्य और मेघ के बीच में होनेवाला संघर्ष है। वैदिक शब्दों के विषय में नैरुक्तों का ही मत मान्य होता है। वैदिक निरुक्त प्रक्रिया से अनभिज्ञ होने के कारण आपको भ्रम हुआ है।

डॉ० अम्बेडकर—महामहोपाध्याय डॉ० काणे का मत है कि—गाय की पवित्रता के कारण ही वाजसनेयी संहिता में गोमांस भक्षण की व्यवस्था दी गई है।

पं० शिवपूजनसिंह—श्री काणेजी ने वाजसनेयी संहिता का कोई प्रमाण और सन्दर्भ नहीं दिया है और न ही आपने यजुर्वेद पढ़ने का कष्ट उठाया है। आप जब यजुर्वेद का स्वाध्याय करेंगे तब आपको स्पष्ट गोवध निषेध के प्रमाण मिलेंगे।

डॉ० अम्बेडकर—ऋग्वेद से ही यह स्पष्ट है कि तत्कालीन आर्य गोहत्या करते थे और गोमांस खाते थे।

पं० शिवपूजनसिंह—कुछ प्राच्य और पाश्चात्य विद्वान् आर्यों पर गोमांस भक्षण का दोषारोपण करते हैं, किन्तु बहुत से प्राच्य विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया है। वेद में गोमांस भक्षण का विरोध करनेवाले २२ विद्वानों के स-सन्दर्भ मेरे पास प्रमाण हैं। ऋग्वेद से गोहत्या और गोमांस भक्षण का आप जो विधान कह रहे हैं, वह वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के अन्तर से अनभिज्ञ होने के कारण कह रहें हैं। जैसे वेद में 'उक्ष' बलवर्धक औषधि का नाम है, जबकि लौकिक संस्कृत में भले ही उसका अर्थ 'बैल' क्यों न हो।

डॉ० अम्बेडकर—बिना मांस के मधुपर्क नहीं हो सकता। मधुपर्क में मांस और विशेषरूप से गोमांस का एक आवश्यक

अंश होता है।

पं० शिवपूजनसिंह—आपका यह विधान वेदों पर नहीं, अपितु गृह्यसूत्रों पर आधारित है। गृह्यसूत्रों के वचन वेदविरुद्ध होने से माननीय नहीं हैं। वेद को स्वत: प्रमाण माननेवाले महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार—'दही में घी या शहद मिलाना मधुपर्क कहलाता है। उसका परिमाण १२ तोले दही में चार तोले शहद या चार तोले घी का मिलाना है।'

डॉ० अम्बेडकर—अतिथि के लिए गोहत्या की बात इतनी सामान्य हो गई थी कि अतिथि का ही नाम 'गोघ्न', अर्थात् गौ की हत्या करनेवाला पड़ गया था।

पं० शिवपूजनसिंह—'गोघ्न' का अर्थ गौ की हत्या करनेवाला नहीं है। यह शब्द 'गौ' और 'हन्' के योग से बना है। गौ के अनेक अर्थ हैं—यथा-वाणी, जल, सुखविशेष, नेत्र आदि। धातुपाठ में महर्षि पाणिनि 'हन्' का अर्थ 'गति' और 'हिंसा' बतलाते हैं। गति के अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। प्राय: सभी सभ्य देशों में जब कभी किसी के घर अतिथि आता है तो उसके स्वागत करने के लिए गृहपति घर से बाहर आते हुए कुछ गति करता है, चलता है, उससे मधुर वाणी में बोलता है, फिर जल से उसका सत्कार करता है और यथासम्भव उसके सुख के लिए अन्यान्य सामग्रियों को प्रस्तुत करता है और यह जानने के लिए कि प्रिय अतिथि इन सत्कारों से प्रसन्न होता है वा नहीं, गृहपति की आँखें भी उसी ओर टकटकी लगाए रहती हैं। 'गोघ्न' का अर्थ हुआ—'गौ: प्राप्यते दीयते यस्मै स गोघ्न: '=जिसके लिए गौदान की जाती है, वह अतिथि 'गोघ्न' कहलाता है।

डॉ० अम्बेडकर—हिन्दू चाहे ब्राह्मण हों या अब्राह्मण, न केवल मांसाहारी थे, किन्तु गोमांसाहारी थे।

पं० शिवपूजनसिंह—आपका कथन भ्रमपूर्ण है, वेद में गोमांस भक्षण की बात तो जाने दीजिए मांस भक्षण का भी विधान नहीं है।

डॉ० अम्बेडकर—मनु ने भी गोहत्या के विरोध में कोई कानून नहीं बनाया, उसने तो विशेष अवसरों पर 'गो-मांसाहार' अनिवार्य ठहराया है।

पं० शिवपूजनसिंह—मनुस्मृति में कहीं भी मांस-भक्षण का वर्णन नहीं है, जो है वह प्रक्षिप्त है। आपने भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं दिया मनुजी ने कहाँ पर गो-मांस अनिवार्य ठहराया है। मनु (५।५१) के अनुसार तो हत्या की अनुमति देनेवाला, अङ्गों को काटनेवाला, मारनेवाला, क्रय और विक्रय करनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला इन सबको घातक कहा गया है।

'अछूत कौन और कैसे' के अतिरिक्त माननीय डॉ० अम्बेडकर जी का दूसरा ग्रन्थ है—'शूद्रों की खोज'। इसमें भी उन्होंने वैदिक विचारधारा पर कुछ आक्षेप किए हैं। यहाँ भी पूर्ववत् संवाद शैली में डॉ० अम्बेडकरजी का आक्षेप पक्ष और शिवपूजनसिंह का समाधान पक्ष प्रस्तुत है—

डॉ० अम्बेडकर—पुरुष सूक्त ब्राह्मणों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रक्षिप्त किया है। कोल बुक का कथन है कि पुरुष सूक्त छन्द तथा शैली में शेष ऋग्वेद से सर्वथा भिन्न है। अन्य भी अनेक विद्वानों का मत है कि पुरुष सूक्त बाद का बना हुआ है।

पं० शिवपूजनसिंह—आपने जो पुरुष सूक्त पर आक्षेप यिा है, वह आपकी वेद अनभिज्ञता को प्रकट करता है। आधिभौतिक दृष्टि से चारों वर्णों के पुरुषों का समुदाय—'सङ्गठित समुदाय'—'एक-पुरुष' रूप है। इस समुदाय पुरुष या राष्ट्र-पुरुष के यथार्थ परिचय के लिए पुरुष सूक्त के मुख्य मन्त्र 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्...' (यजुर्वेद ३१।११) पर विचार करना चाहिए।

उक्त मन्त्र में कहा है ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जङ्घाएँ और शूद्र पैर। केवल मुख, केवल भुजाएँ, केवल जङ्घाएँ या केवल पैर पुरुष नहीं, अपितु मुख, भुजाएँ, जङ्घाएँ और पैर, 'इनका समुदाय' पुरुष अवश्य है। वह समुदाय भी यदि असङ्गठित और क्रमरहित अवस्था में है तो उसे हम पुरुष नहीं कहेंगे। उस समुदाय को पुरुष तभी कहेंगे जबकि वह समुदाय एक विशेष प्रकार के क्रम में हो और एक विशेष प्रकार से सङ्गठित हो।

राष्ट्र में मुख के स्थानापन्न ब्राह्मण हैं, भुजाओं के स्थानापन्न क्षत्रिय, जङ्घाओं के स्थानापन्न वैश्य और पैरों के स्थानापन्न शूद्र हैं।

राष्ट्र में ये चारों वर्ण, जब शरीर के मुख आदि अवयवों की तरह सुव्यवस्थित हो जाते हैं, तभी इनकी पुरुष संज्ञा होती है। अव्यवस्थित या छिन्न–भिन्न अवस्था में स्थित मनुष्य समुदाय को वैदिक परिभाषा में पुरुष शब्द से नहीं पुकार सकते। आधिभौतिक दृष्टि से 'यह सुव्यवस्थित तथा एकता के सूत्र में पिरोया हुआ ज्ञान, क्षात्र, व्यापार–व्यवसाय, परिश्रम–मजदूरी इनका निदर्शक जनसमुदाय ही 'एक पुरुष' रूप है।

चर्चित मन्त्र का महर्षि दयानन्द इस प्रकार अर्थ करते हैं—
''इस पुरुष की आज्ञा के अनुसार विद्या आदि उत्तम गुण तथा सत्यभाषण और सत्योपदेश आदि श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है। इन मुख्य गुण और कर्मों के सहित होने से वह मनुष्यों में उत्तम कहलाता है और ईश्वर ने बल पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है। इस पुरुष के उपदेश से खेती, व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है, जैसे पग सबसे नीचे का अङ्ग है, वैसे मूर्खता आदि निम्न गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।''

आपका लिखना कि पुरुष सूक्त बहुत समय बाद ऋग्वेद में जोड़ दिया गया, सर्वथा भ्रमपूर्ण है। चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, पुरुष सूक्त बाद का नहीं है। मैंने अपनी पुस्तक ''ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात'' में सम्पूर्ण पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों के इस मत का खण्डन किया है कि ऋग्वेद का दशम मण्डल, जिसमें पुरुष सूक्त भी विद्यमान है, बाद का बना हुआ है।

डॉ० अम्बेडकर—शूद्र क्षत्रियों के वंशज होने से क्षत्रिय हैं। ऋग्वेद में सुदास, शिन्यु, तुरवाशा, तृप्सु, भरत आदि आदि शूद्रों के नाम आये हैं।

पं० शिवपूजनसिंह—वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं, रूढि नहीं। आपने ऋग्वेद से जिन नामों को प्रदर्शित किया है। वे ऐतिहासिक नाम नहीं हैं। वेद में इतिहास नहीं है, क्योंकि वेद सृष्टि के आदि में दिया ज्ञान है।

डॉ० अम्बेडकर—छत्रपति शिवाजी शूद्र तथा राजपूत हूणों की सन्तान हैं। (शूद्रों की खोज, दसवाँ अध्याय, पृष्ठ ७७ से ९६)

पं० शिवपूजनसिंह—शिवाजी शूद्र नहीं, वरन् क्षत्रिय थे, इसके लिए अनेकों प्रमाण इतिहासों में भरे पड़े हैं। राजस्थान के प्रख्यात इतिहासज्ञ, महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा डी० लिट् लिखते हैं—'मराठा जाति दक्षिणी हिन्दुस्तान की रहनेवाली है। उसके प्रसिद्ध राजा छत्रपति शिवाजी के वंश का मूल-पुरुष मेवाड़ के सीसोदिया राजवंश से ही था।' कविराज श्यामलदासजी लिखते हैं—'शिवाजी महाराणा अजयसिंह के वंश में थे।' यही सिद्धान्त डॉ० बालकृष्ण जी एम०ए०डी० लिट्, एफ०आर०एस०एस० का भी है।

इसी प्रकार राजपूत हूणों की सन्तान नहीं, किन्तु शुद्ध क्षत्रिय हैं। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम०ए०, श्री ई०बी० कावेल, श्री शेरिंग, श्री व्हीलर, श्री हंटर, श्री क्रूक, पं० नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य एम०एम०डी०एल० आदि विद्वान् राजपूतों को शूद्र क्षत्रिय मानते थे। प्रिवी कौंसिल ने भी निर्णय किया है, अर्थात् जो क्षत्रिय भारत में रहते हैं और राजपूत एक ही श्रेणी के हैं।

६ दिसम्बर १९५६ को माननीय डॉ० अम्बेडकरजी का देहावसान हुआ। शिवपूजनसिंह का यह चर्चित 'भ्रान्ति निवारण' लेख 'सार्वदेशिक' मासिक में उनके देहावसान से लगभग पाँच साल तीन महिने पूर्व प्रकाशित हुआ था। 'सार्वदेशिक' से डॉ० अम्बेडकरजी सुपरिचित थे तथा चर्चित अङ्क भी उनकी सेवा में यथासमय भिजवा दिया गया था। भारत रत्न डॉ० अम्बेडकरजी के 'अछूत कौन और कैसे' और 'शूद्रों की खोज' ग्रन्थ तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' एवं रिसर्च स्कॉलर शिवपूजनसिंह कुशवाह का 'भ्रान्ति निवारण' नामक १६ पृष्ठीय आलेख मूलरूप में ही पढ़कर आशा है विचारशील पाठक सत्यासत्य का निर्णय लेंगे। मूलतः 'भ्रान्ति निवारण' लेख संवाद शैली में नहीं है, अपितु शङ्का-समाधान शैली में है। हमने स्वाध्यायशील पाठकों की सुविधा और सरलता हेतु संवाद शैली में रूपान्तरित किया है।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक और डॉ० अम्बेडकर



आर्यसमाज की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था—'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के मुखपत्र 'सार्वदेशिक' का उसके जन्म काल (१९२७) से ही सम्पादन कर रहे, पं० रघुनाथप्रसाद पाठक (१९०१-१९८५) ने श्री डॉ० अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन पर अपनी सम्पादकीय टिप्पणी अंकित करते हुए उन्हें अपने निश्चय पर पुनर्विचार करने का सुझाव दिया था। श्री पाठकजी की टिप्पणी का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

'गत अक्टूबर मास (१९५६) में श्रीयुत डॉ० अम्बेडकर ने दो लाख दलितों के साथ नागपुर में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। इस समाचार में हिन्दू जगत् में सनसनी फैल जाना स्वाभाविक था और सनसनी फैली भी। डॉ० अम्बेडकर पढ़े-लिखे, समझदार और देश के एक प्रसद्धि व्यक्ति हैं। यदि वे अकेले बौद्धमत से प्रभावित होकर उसमें दीक्षित होते, तो समाज को कोई विशेष चिन्ता न होती, परन्तु उनके साथ वे अधिकांश व्यक्ति दीक्षित हुए हैं, जिन्हें बौद्धमत का थोड़ा भी परिज्ञान नहीं है, इसलिए उनके धर्म परिवर्तन में हृदय की प्रेरणा न होने से वह स्वेच्छया धर्म परिवर्तन नहीं कहा जा सकता।'

हमें भय है कि कहीं यह धर्म परिवर्तन राजनैतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रयुक्त न हो जाए। यदि ऐसा हुआ तो बौद्धधर्मी बने हुए ये लोग बौद्ध मत के अपयश का कारण बन जाएँगे। एक भय और भी है और वह यह कि उन नव बौद्धों के साथ अब भी मुख्यतया ग्रामों में अस्पृश्यों जैसा ही व्यवहार होगा। उनकी स्थिति में सुधार होना तो एक ओर उल्टे बौद्ध मत को जात-पाँत की एक नई बीमारी लग जाएगी।

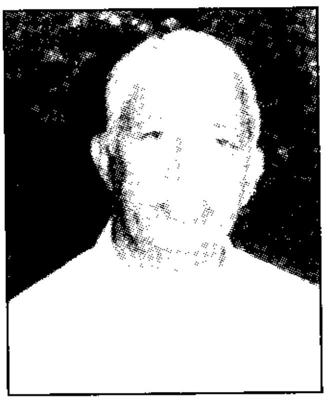
अस्पृश्यता के निवारण का उपाय यह है कि सवर्णों के हृदयों में से प्रशिक्षण तथा समय की गति की पहचान के द्वारा-

अस्पृश्यता की भावना निकल जाए, और अस्पृश्यों के हृदयों में अपने को हेय समझने की मनोवृत्ति नष्ट हो जाए, इसलिए धैर्य और विवेक से काम लेने की आवश्यकता है। यह कार्य धीरे-धीरे हो रहा है और दोनों की ही मनोवृत्तियों में उत्तम परिवर्तन हो रहा है। आर्यसमाज इस कार्य में मार्ग-दर्शन कर रहा है। कांग्रेस ने अस्पृश्यता को कानूनी अपराध ठहरा दिया है।

इस प्रकार के सामूहिक परिवर्तन से न तो हिन्दुओं की मनोवृत्ति बदल सकती है और न अस्पृश्यों की स्थिति ठीक हो सकती है, अत: इनसे लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक आशंका है, अस्पृश्य कहे जानेवाले भाइयों को अपने हित-अहित के प्रति सावधान रहना चाहिए, और अपने को भेड़-बकरी न बनने देना चाहिए। राजनीतिज्ञों की चाल का मुहरा बन जाने से उन्हें पहले ही लाभ की अपेक्षा सामूहिक हानि अधिक हुई है, और यदि वे सावधान न रहें तो और भी भयंकर हानि हो सकती है।[१८]

अन्त में हम यह प्रार्थना और आशा कर रहें हैं कि डॉ० अम्बेडकर अपने निश्चय पर पुनर्विचार करेंगे। वे हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन का ही काम हाथ में ले लें, तो बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनके व्यक्तित्त्व और विद्वत्ता के प्रति सवर्ण हिन्दुओं में आदर है। (सार्वदेशिक : मासिक, दिसम्बर १९५६ : पृष्ठ ५११-५१२)

डॉ० भवानीलाल भारतीय और डॉ० अम्बेडकर



अपनी लेखनी द्वारा समय-समय पर आर्यसमाज की भूमिका स्पष्ट करनेवाले लेखकों में डॉ० भवानीलाल भारतीय (जन्म १, मई १९२८) का उल्लेखनीय स्थान है। डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्त्व तथा उनके द्वारा की गई 'आर्यों की सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी आलोचना' पर डॉ० भारतीय ने एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखी है, जो उन्हीं के शब्दों में सार रूप में यहाँ प्रस्तुत है—

"डॉ० भीमराव अम्बेडकर एक अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। हिन्दुओं में प्रचलित जाति प्रथा विषयक परिणामों, दलित और अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों की दुर्दशा तथा इस वर्ग के प्रति किये जानेवाले अमानुषिक और बर्बर व्यवहार का कटु अनुभव उन्हें अपनी छात्रावस्था में ही हो गया था। आगे चलकर वे दलित जातियों के नेता और उनके राजनीतिक एवं सामाजिक हितों के निर्विवाद प्रवक्ता बन गये। धीरे-धीरे डॉ० अम्बेडकर का सवर्ण हिन्दुओं तथाकथित उच्च जातियों तथा आर्यों की वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आक्रोश बढ़ता ही गया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को समाज में असमानता, भेद-भाव तथा अत्याचार का कारण माना तथा ब्राह्मणवाद को इस सबके लिए उत्तरदायी घोषित किया। इस तथाकथित ब्राह्मणशाही का सबसे बड़ा समर्थन उन्हें मनुस्मृति में ही मिला, इसलिए उन्होंने मनुस्मृति के विरोध में अभियान चलाया तथा इस प्राचीन धर्मशास्त्र के पन्ने जलाये गये (दिनांक २५ दिसम्बर १९२७)। उनके ही कुछ अधिक उग्र अनुयायियों ने भारत की संसद में मनुस्मृति के पन्ने फाड़े (दिनांक : ४ मार्च १९६०)।"

डॉ० अम्बेडकर गम्भीर तथा अध्ययनशील प्रकृति के पुरुष थे। देश के स्वाधीनता प्राप्त करने की घड़ी में डॉ० अम्बेडकर पर कुछ अन्य जिम्मेवारियाँ आ गईं। कानून के उच्च विद्वान् होने तथा संसार के अनेक राष्ट्रों के संविधानों के अध्येता होने के कारण भारत का संविधान निर्मात्री परिषद ने उन्हें स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाने का दायित्व सौंपा, जिसे उन्होंने सम्पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता से निभाया। बौद्ध धर्म का अध्ययन कर वे इस नतीजे पर पहुँचे कि महात्मा बुद्ध ही सामाजिक समता का पाठ पढ़ानेवाले अद्वितीय महापुरुष थे। बुद्ध के समतावाद ने उन्हें इतना प्रभावित कर लिया कि वे हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध प्रव्रज्या लेने का विचार बना बैठे और अपने सहस्त्रों अनुयायियों के साथ त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म और संघ) की शरण ली।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म ही क्यों ग्रहण किया। वे ईसाई या मुसलमान क्यों नहीं बन गये, जबकि भारत में तो यह एक रिवाज़ ही बन गया था कि जो भी व्यक्ति हिन्दू धर्म से ऊब जाता, वह ईसाई अथवा इस्लाम

को ही ग्रहण करता। बात यह थी कि डॉ० अम्बेडकर सुपठित तथा चिन्तनशील व्यक्ति थे। ईसाइयत और इस्लाम की कट्टरपन्थी विचारधारा उनके स्थूल कर्मकाण्ड तथा प्रायः दर्शन विहीन खोखले अध्यात्म में, उनके लिए कोई आकर्षण नहीं था, वे इन मतों की परम असहिष्णुता तथा कट्टरपन्थी धारणाओं से भी सुपरिचित थे, इसलिए उन्होंने ईसाई या मुसलमान बनने की अपेक्षा तथागत बुद्ध धर्म को ही स्वीकार किया।

तथापि डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में वैदिक धर्म, आर्यों की धार्मिक मान्यताओं, उनके समाज संगठन तथा उनकी आस्थाओं पर अनेक कठोर निर्मम, किन्तु निर्मूल आक्षेप भी किये हैं। उनका अन्तिम, किन्तु अपूर्ण लेख १५ अप्रैल और १४ मई १९७२ के 'न्यायचक्र' नामक पत्र में प्रकाशित किया गया है। इसमें आर्य सभ्यता तथा आर्यों की सामाजिक व्यवस्था एवं रीति-रिवाज़ों पर अनेक मिथ्या आक्षेप किये गये हैं। यद्यपि डॉ० अम्बेडकर की अनेक धारणाएँ इतिहास के ठोस तथ्यों पर आधारित होने के कारण निर्विवाद भी हैं, किन्तु उनका यह सब लिखने का प्रयोजन आर्य वैदिक सभ्यता को असभ्य, अनैतिक, व्यभिचार की जननी तथा सदाचार की विनाशक ठहराना ही है। यह तो सत्य है कि बुद्ध के काल तक आते-आते आर्यों की सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्थिति बहुत कुछ निकृष्टता को प्राप्त हो चुकी थी, किन्तु उसके लिए आर्यों के मूल ग्रन्थों तथा उनमें वर्णित आदर्श विविध-विधानों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। द्यूतक्रीडा, मदिरापान, व्यभिचार आदि ऐसी वैयक्तिक और सामाजिक बुराइयाँ हैं, जो न्यूनाधिक रूप से सभी वर्गों और समाजों में पाई जाती हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि तत्-तत् धर्म या समाज के पुरस्कर्ता शास्त्र या महापुरुष इन बुराइयों को करने की आज्ञा देते हैं अथवा उन्हें अच्छा मानते हैं।

डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में जुआ की लत केवल आर्यों में ही पाई जाती है, किन्तु उनका यह निरा भ्रम ही है। कौटिल्य के युग में यदि लाइसेन्स याफ्ता जुआघर थे, तो यह राजा का ऐसे व्यसनियों से भी राजस्व लेने का एक तरीका ही सूचित करता है। क्या आज की सरकार शराब को प्रोत्साहन देकर राजस्व अर्जित

नहीं करती ? कौटिल्य ने जुआ को नियन्त्रित करने की ही बात की है, उसकी श्लाघा तो नहीं की। सोम और सुरा नाम से शराब का द्विविध वर्गीकरण लेखक की मनःप्रसूत कल्पना ही है। वेदों में जिस सोम का उल्लेख है, वह कोई भौतिक नशा नहीं है। वह तो आध्यात्मिक नशा है, जिसके बारे में गुरु नानक ने कहा था—

माडा नशा शराब दा, उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात॥

आर्यों के यौन आचरण विषयक निरंकुशता अथवा आचार-शैथिल्य का उदाहरण देने के लिए डॉ० अम्बेडकर ने वेद तथा तत् सदृश अन्य साहित्य में उल्लिखित कुछ सन्दर्भ तो दिये, किन्तु इन प्रसंगों की व्याख्या में काम आनेवाली आलंकारिक शैली की नितान्त उपेक्षा ही कर दी। तभी तो वे ब्रह्मा के स्वदुहिता गमन, यम-यमी सूक्त, सूर्य और उषा आदि के ऐसे उदाहरण देते हैं, जो वास्तव में ऐतिहासिक पात्र या घटनाएँ हैं ही नहीं। उपर्युक्त प्रसंगों की व्याख्या के लिए वेदार्थ की निरुक्त वर्णित पद्धति की जानकारी आवश्यक है। किसी युग में यौन स्वेच्छाचारिता का उदाहरण मिलता भी है, तो वह कोई सार्वजनीन या शाश्वत विधान नहीं है और न आचरणीय ही है, अतः पराशर सत्यवती, कुन्ती का कौमार्यावस्था में गर्भधारण आदि प्रसंगों को आदर्श और अनुकरणीय कोई नहीं मानता। लाजा होम तथा सप्तपदी पर डॉ० अम्बेडकर की टिप्पणियाँ भी कपोल कल्पित हैं। नियोग की प्रथा किसी युग में श्लाघ्य समझी जाती थी, किन्तु कालान्तर में उसे पशुधर्म कहकर गर्हित मान लिया गया। इसलिए किसी काल या देश-विदेश में प्रचलित किसी सामाजिक या नैतिक नियम के आधार पर किसी जाति या धर्म को लांछित नहीं किया जा सकता।

मनुस्मृति में वर्णित ब्राह्मण का महिमा गान वास्तव में ब्राह्मणत्व की प्रशंसा है। इसी प्रकार शूद्र भी किसी वर्ग का वाचक न होकर गुण-कर्म-हीन व्यक्ति का सूचक है। ऐसा व्यक्ति तो समाज के श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा ही करेगा। अन्य कुछ करने की उसमें क्षमता ही कहाँ है ? और यदि आगे बढ़ने की उसमें शक्ति और सामर्थ्य है तो उसे रोकने तथा उसका मार्ग अवरुद्ध करने का

विधान भी किसी शास्त्र में नहीं है। इसके विपरीत ब्राह्मणों के स्व-कर्महीन होने के कारण निम्न वर्णों में जाने तथा हीन वर्णस्थ लोगों के ऊँचे उठने के अनेक दृष्टान्त आर्य ग्रन्थों में मिलते हैं।

तथापि हमें यह स्वीकार करने में कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं है कि मध्यकालीन स्मृतियों, धर्मशास्त्र के निबन्ध ग्रन्थों तथा अन्य विधि ग्रन्थों में सामाजिक वैषम्य को बढ़ानेवाली, वर्णों के बीच विद्वेष तथा घृणा उत्पन्न करनेवाली बातें भी प्रचुर मात्रा में हैं, किन्तु आर्यसमाज जैसी सामाजिक सौहार्द को प्रचारित करनेवाली संस्था तथा उसके संस्थापक ऋषि दयानन्द ने ऐसे धर्मग्रन्थों को न तो प्रामाणिक माना और न उन्हें कभी महत्त्व दिया।

डॉ० अम्बेडकर के आज के अनुयायियों में तो अपने नेता जैसी उदारता, गम्भीरता तथा अध्ययनशीलता भी नहीं है। इसलिए वे सामाजिक विषमता का विरोध तथा अनुसूचित और पिछड़ी जातियों के अधिकारों की मांग करते-करते इतने अनुदार और उग्र हो जाते हैं, जिससे ऐसा लगता है मानो यदि यह अम्बेडकरवाद चलता रहा तो निकट भविष्य में सवर्णों तथा अनुसूचित जातियों के बीच विद्यमान सौहार्दभाव सर्वथा समाप्त हो जाएगा, और यह वर्ण द्वेष, वर्ग द्वेष में बदल जाएगा। ईश्वर करे वह दुर्दिन न आये। सामाजिक विषमता को सामाजिक घृणा में बदलने का परिणाम वर्ण युद्ध और अंततः विनाश के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता। हमारी विनम्र सम्मति में ब्राह्मण शाही का हौवा खड़ा करना सामाजिक विषमता, शोषण तथा अत्याचार से पीड़ित वर्तमान समाज में और अधिक अराजकता को आमन्त्रण देना है।'' (सन्दर्भः आर्यों की समाज-व्यवस्था की डॉ० अम्बेडकरकृत आलोचना की समीक्षा, समीक्षक : डॉ० भवानीलाल भारतीय : सार्वदेशिक साप्ताहिक : ३० अगस्त १९९२—पृ० ७ और ६ तथा सितम्बर १९९२ पृष्ठ ६ और ८)।

उपसंहार

किसका किस पर प्रभाव पड़ा था। किसने किससे प्रेरणा प्राप्त की—यह बात गौण है। संसार में अच्छाई का बीज पूरी तरह कभी भी नष्ट नहीं होता। विष्णु बुवा ब्रह्मचारी, (१८२५–१८७१) बालशास्त्री जांभेकर (१८१२–१८४६), दादोबा पांडुरंग तर्खडकर (१८१४–१८८२), सेवकलाल कर्सनदास, नाना शंकरसेठ (१८०३–१८६५), न्यायमूर्ति रानाडे (१८४२–१९०१) तथा महात्मा फुले (१८२७–१८९०) ने महाराष्ट्र के सामाजिक क्षेत्र में कायाकल्प लाने का अनथक प्रयास किया था, इसलिए मुम्बई में विश्व की सर्वप्रथम आर्यसमाज स्थापित होने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। स्वामी दयानन्द की गतिविधियाँ न्यूनाधिक मात्रा में क्यों न हों, महाराष्ट्र में दृढ़मूल और सुदृढ़ हुईं। महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु समस्त भारतवर्ष में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की जो भूमिका रही, उससे जाने–अनजाने एक–ऐसा वातावरण भी तैयार हुआ कि डॉ० अम्बेडकरजी के लिए समता–बन्धुता का कार्य करना निश्चित रूप से सुकर हो गया। युगनायक, मूकनायक डॉ० अम्बेडकर (१८९१–१९५६) की पृष्ठभूमि में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज का कालखण्ड न होता तो यह सुनिश्चित था कि डॉ० अम्बेडकरजी को उपेक्षित मानवता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए और भी अधिक कठिनाइयों के दौर से गुजरना पड़ता। भारतीय संविधान के निर्माता डॉ० अम्बेडकर और आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के उदात्त सपनों को साकार करने के लिए सभी प्रगतिशील ताकतों का एक जुट होना जरूरी है। जिससे आनेवाली पीढ़ी का मार्ग निष्कंटक हो सके और सन्त ज्ञानेश्वर की 'विश्व चि माझे घर' (वसुधैव कुटुम्बकम्) की संकल्पना सहज साध्य हो सके। तभी महात्मा फुले, स्वामी दयानन्द और भारतरत्न डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर की याद में आयोजित किये जानेवाले समारोह सार्थक और सफल हो पाएँगे।

संदर्भ—

१. पं० रामप्रसाद बिस्मिल—आत्मकथा—पृष्ठ-५।
२. डॉ० अम्बेडकर—बहिष्कृत भारत: ४ नवम्बर १९२७।
३. पत्र व्यवहारातून डॉ० अम्बेडकर: प्रथम खण्ड-पृ० २७, ३३, ३५।
४. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्रावी—अर्वाचीन चरित्र कोश—पृ० ३३३।
५. पत्र व्यवहारातून डॉ० अम्बेडकर : पृष्ठ-६५। डॉ० अम्बेडकरजी अपना जो 'विजिटिंग कार्ड' अन्यों को देते थे, उस पर भी लिखा रहता था—डॉ० भीमराव अम्बेडकर बैरिस्टर, दामोदर हॉल, परल, मुम्बई नं० १२ (लोकमत, रविवार १३ अप्रैल १९९७-पृ०—४ लेख—डॉ० बाबासाहेब अम्बेडकर यांची एक गाजलेली प्रस्तावना—लेखक—डॉ० गंगाधर पानतावणे)।
६. डॉ० अम्बेडकर—जातिभेद निर्मूलन : प्रथमावृत्ति-प्रज्ञा प्रकाशन, नागपुर—महात्मा गान्धी को डॉ० अम्बेडकर का उत्तर, पृष्ठ-१०९।
७. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर—जाति उन्मूलन : पृष्ठ-१०६- १०७, संस्करण-सितम्बर १९८७, दलित साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
८. तत्रैव : प्रस्तावना—डॉ० बी० आर० अम्बेडकर—पृष्ठ-१९।
९. सत्यकेतु विद्यालंकार—आर्यसमाज का इतिहास-भाग-२, पृष्ठ-५४७, प्रथम संस्करण-सन् १९८४, प्रकाशक—आर्य स्वाध्याय केन्द्र, ए-१/३२, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली-११००२९।
१०. तत्रैव—पृष्ठ-१२८।
११. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर—जाति उन्मूलन: प्रस्तावना, पृ०-१९।
१२. डॉ० अम्बेडकरजी के लिखित भाषण के कतिपय वे वाक्य प्रस्तुत हैं, जिनमें वेद का प्रयोग हुआ है—किसी भी बात में, जिस पर श्रुति और स्मृतियों ने स्पष्ट निर्देश दिये हैं, हिन्दुओं के लिए यह स्वतन्त्रता नहीं है कि वह अपनी तर्क की आन्तरिक शक्ति का उपयोग करे। आप किस प्रकार जाति तोड़नेवाले हैं। यदि लोग इस बात के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं कि क्या वह बात तर्क सम्मत है? क्या वह बात नीति-विद्या से मेल खाती है? जो वेद और शास्त्र तर्क, नीति और विद्या के किसी भी अंश को स्वीकार नहीं करते, उनके लिए बारूद का प्रयोग करना होगा, जातिनिर्मूलन के लिए यह मेरा पक्का विचार है। ''धर्म शब्द जैसा कि वेदों में प्रयोग किया गया, बहुत-सी बातों में धार्मिक अध्यादेश और

अनुष्ठान हैं। स्पष्ट कहा जाए तो मैं इन अध्यादेशों की (वेद) संहिता को धर्म कहने से इन्कार करता हूँ।''

(डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर : जाति उन्मूलन—पृ० ७४-८१)

यह तो स्पष्ट ही है कि आर्यसमाज वेद-प्रमाण्यवादी संस्था है, कुछ आर्यसमाजी ऐसे मिल सकते हैं, जो वेद को ईश्वरकृत, अनादि और अभ्रान्त न मानें, पर वे अपवाद हैं, संस्था के रूप में तो आर्यसमाज का वेद-प्रामाण्यवाद पर विश्वास जग-जाहिर है।

यहाँ पर डॉ० अम्बेडकर ने आर्यसमाज की मान्यता को न समझकर वेदों के सम्बन्ध में ऐसी भ्रान्त धारणा बना ली है। इसका कारण ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन करके निष्कर्ष निकालना है, जो वर्ण-व्यवस्था को जन्म के आधार पर मानते हैं, परन्तु वेदों में उस प्रकार की वर्ण-व्यवस्था का कहीं भी वर्णन नहीं है।—सम्पादक

१३. ''दि स्वामी वॉज दि ग्रेटेस्ट एण्ड दि मोस्ट सिंसियर चैंपियन ऑफ दि अन्टचेबल्स, देयर इज नॉट दि स्लाइटेस्ट डाउट दॅट इफ हि हैड वर्क्ड ऑन हिम इन दि कमेटी एण्ड वाज अफ्रेड देट ही वुड मेक ए बिग डिमाण्ड ऑन कांग्रेस फंड्स दि कॉज ऑफ दि अन्टचेबल्स इज क्लियर फ्रॉम दि कॉरस्पॉडन्स ऑफ ? जनरल सेक्रेटरी ऑफ दि कांग्रेस''—'व्हॉट कांग्रेस एण्ड गाँधी हैव डन टू दि अन्टचेबल्स'—पृष्ठ २३-२४।

१४. डॉ० अम्बेडकर—बहिष्कृत भारत (साप्ताहिक)—३ अप्रैल १९२७, पृष्ठ-९।

१५. डॉ० चां० भ० खैरमोडे—डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर चरित्र, खण्ड-२, द्वितीय आवृत्ति-१४-१०-१९९१, पृष्ठ-१९६।

१६. गंगाप्रसाद उपाध्याय, जीवन चक्र: (आत्मकथा) पृ० १३३-३४, २६३-२७२, प्रथम संस्करण-सन् १९५४।

१७. लक्ष्मीदत्त दीक्षित—खट्टी-मीठी यादें : संस्करण—सन् १९८८

१८. दि० २७ मई, २००७ को मुम्बई के महालक्ष्मी रेसकोर्स पर बौद्ध धर्म दीक्षा के स्वर्ण महोत्सव पर महाराष्ट्र से आये लगभग एक लाख लोगों में से प्रा० लक्ष्मण माने के नेतृत्व में ४२ (बयालीस) घुमक्कड़ और विमुक्त जन समुदाय के लोगों ने बौद्ध धर्म की

दीक्षा ग्रहण की। इस अवसर पर श्री रामदास आठवले ने प्रसिद्ध २२ प्रतिज्ञाओं की शपथ ग्रहण करवाई। बौद्ध धर्म में प्रविष्ट हुए इन जन- जातियों के नेता श्री लक्ष्मण माने [सम्पर्क-समता-१०-ब-करंजे, सातारा (महाराष्ट्र) पिन-४१५ ००२। दूरभाष ०२१६२-२५०५५६] ने स्पष्ट किया कि केवल धर्म बदलने से कुछ नहीं होगा, अपने आचरण में भी परिवर्तन करना जरूरी है। शिक्षा का प्रसार और सभी स्तरों पर रोटी-बेटी का व्यवहार [अन्तर्जातीय विवाह] हुए बिना जाति संस्था नष्ट नहीं होगी। इस अवसर पर श्री रामदास आठवले (संसद सदस्य एवं अध्यक्ष भारतीय रिपब्लिकन पार्टी) महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री—विलासराव देशमुख (कांग्रेस) उप मुख्यमन्त्री—श्री आर० आर० पाटिल (राष्ट्रवादी कांग्रेस) के अतिरिक्त दस देशों के बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। (सकाळ-मराठी— दैनिक-२८।५।२००७)।

— o —

पाश्चात्य विचारक रोमा रोलां के शब्दों में—

''दलित वर्ग को उठाने, अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए श्री शंकराचार्य से लेकर राजा राममोहन राय तक जो बात किसी भारतीय सुधारक और विचारक को न सूझी, दयानन्द ने दलितों के लिए, अस्पृश्य समझे जानवाले भाइयों के अधिकारों के लिए, वेद का प्रमाण देकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। ऐक्यवाद का सिंहनाद गुंजाता हुआ वेदवादी दयानन्द जब—'यथेमां वाचं कल्याणीम्' (यजुर्वेद २६/२) यह वैदिक ऋचा लेकर शास्त्रार्थ के समर में उतरा तो जन्माभिमानी लोगों में खलबली मच गई।''

—प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' —एकता का शंखनाद— लेख-'अस्पृश्यता-मरण व्यवस्था'—पृ० ४०-४१। प्रकाशक—वैदिक प्रकाशन, सीताराम बाजार, दिल्ली। संस्करण—मार्च १९९८।

परिशिष्ट–१

वर्ण–व्यवस्था के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्दजी का दृष्टिकोण

प्रश्न : क्या जिसके माता ब्राह्मणी, पिता ब्राह्मण हों, वह ब्राह्मण होता है ? और जिसके माता–पिता अन्य वर्णस्थ हों, उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

उत्तर : हाँ बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

प्रश्न : हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है, इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर : यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच–सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त की परम्परा मानते हैं। देखो, जिसका पिता श्रेष्ठ उसका पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ उसका पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं। इसलिए तुम लोग भ्रम में पड़े हो।

......जो कोई रज–वीर्य के योग से (जन्मना) वर्ण–व्यवस्था मानें और गुण कर्मों के योग से न मानें तो उससे पूछना चाहिए कि—जो कोई अपने वर्ण को छोड़ अन्त्यज अथवा क्रिश्चियन-मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है, जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाववाला होवे, तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

—सत्यार्थप्रकाश : चतुर्थ समुल्लास

परिशिष्ट–२

Reg. No. B. 1430

जाहिरातींचे दर :–
कालमच्या दर ओळीस पहिल्या वेळीं ५ आणे.
दुसऱ्या वेळीं ४ आ.
कायम २॥ आणे.

मूकनायक

वर्गणीचा दर
वार्षिक ट. ह. सह
२॥ रुपये.

काय करूं आतां धरूनियां भीड । निःशंक हें तोंड वाजविलें ।।
नव्हे जगीं कोणी मुकीयांचा जाण । सार्थक लाजून नव्हे हित ।।

वर्ष १ लें.] मुंबई, शनिवार ता. ३१ आनेवारी १९२० [अंक १ ला

मूकनायक.

मनोगत

हिंदुसमाज हा एक मनोरा आहे. व एक एक जात म्हणजे त्याचा एक एक मजलाच होय. पण लक्षात ठेवण्या-सारखी गोष्ट ही आहे की, या मनोऱ्यास शिडी नाही. आणि म्हणून एका मजल्यावरून दुसऱ्या मजल्यावर जाण्यास मार्ग नाही. ज्या मजल्यात ज्यांनी जन्मावे; त्याच मजल्यात त्यांनी मरावे. खालच्या मजल्यातला इसम, मग तो कितीही लायक असो; त्याला वरच्या मजल्यात प्रवेश नाही. व वरच्या माजल्यातला माणूस, मग तो कितीही नालायक असो; त्याला खालच्या मजल्यात लोटून देण्याची कोणाची प्राज्ञा नाही.

हिन्दू समाज के सम्बन्ध में डॉ० अम्बेडकर का दृष्टिकोण

''हिन्दू समाज उस मीनार के समान है, जिसकी एक–एक जाति उसकी एक–एक मंजिल है। पर ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इस मीनार में जाने के लिए सीढ़ी नहीं है। इस कारण एक मंजिल से दूसरी मंजिल में जाने के लिए रास्ता नहीं है। जिस मंजिल में जिसका जन्म हुआ, उसी मंजिल में उसे मरना है। नीचे की मंजिल का आदमी चाहे वह कितना ही लायक क्यों न हो, उसे ऊपर जाने का अवसर नहीं है। ऊपर की मंजिल का आदमी फिर वह कितना ही नालायक क्यों न हो, उसे निचली मंजिल में धकेल देने की बौद्धिक क्षमता किसी में नहीं है।''

*—'**मूकनायक**' पत्र के सम्पादकीय से दिनांक–३१ जनवरी १९२०।*

परिशिष्ट–३

गुण श्रेष्ठ है या जाति श्रेष्ठ?

(डॉ० अम्बेडकर जी द्वारा डी०ए०वी० कॉलेज–लाहोर के संचालकों का अभिनन्दन)

''एक बार की बात है, नागपुर कॉलेज में पढ़ रहा एक 'महार' विद्यार्थी प्रधानाचार्य के पास गया तथा अपने घर की ओर लौट जाने की अनुमति माँगते हुए उसने उनसे कहा कि—'ब्राह्मण से हमारा झगड़ा हो गया है और मैं एकाध ब्राह्मण की हत्या कर सका तो यह समझूँगा कि मेरा जन्म सार्थक हो गया है।' यह इस बात का प्रमाण है कि पददलित, पीड़ित, व्यथित, युवा दलित सुशिक्षित हो तो उसके मन में क्या–क्या और कैसे–कैसे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, यह उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट और सिद्ध है।

लाहौर स्थित एक चमार जाति के लड़के का भी इसी प्रकार का अपमान हुआ और इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं कि उसके भी मन में उक्त 'महार' छात्र की तरह ही विचार उत्पन्न हुए हों। पर यह आनन्द की बात है कि उसकी क्रोधाग्नि पर शीघ्र ही साम–दण्ड के जल का सिंचन हो जाने से वह शांत हो गया। यह चमार विद्यार्थी विगत जून महीने में मॅट्रिक्युलेशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ व अग्रिम अध्ययन के लिए लाहौर स्थित दयानन्द कॉलेज में उसने अपना नाम प्रविष्ट कराया। किसी कारणवश प्रस्तुत कॉलेज से संलग्न छात्रावास में रहना उसके लिए अनिवार्य हो गया। पर प्रस्तुत छात्रावास के [सभी] सौ पाचकों ने शिकायत–सी करते हुए यह कहा कि—'चमार लड़के को न तो हम खाना परोसेंगे और न ही उसके झूठे बर्तन उठाएँगे।' कॉलेज के प्रधानाचार्यजी ने इन तिलमिलाए, बदहवास हुए 'ब्राह्मण्यग्रस्त' रसोइयों को यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि—'यह कॉलेज आर्यसमाज का है तथा आर्यसमाज जातिभेद जन्य ऊँच–नीच युक्त भेदभाव को बिल्कुल भी नहीं मानता है।' इत्यादि तथ्यों द्वारा बहुत ही समझाने की कोशिश की, पर विविध प्रकार के उपाय करने के बावजूद भी रसोइयों को प्रधानाचार्य की बात समझ में नहीं आ

रही थी। वे सब हड़ताल पर उतर आये और उन्होंने यह धमकी दे डाली कि—'चमार लड़के को निकालो, अन्यथा हम सब अपना काम छोड़कर चले जाएँगे।' इस प्रकार संघर्ष पर उतारू हुए रसोइयों की समस्या प्राचार्यजी ने छात्रावासीय समिति के सामने प्रस्तुत की और समिति ने रसोइयों को ही सेवा कार्य से मुक्त करने का निर्णय ले-लिया। इस निर्णय के कारण **हम दयानन्द कॉलेज लाहौर के तत्त्वनिष्ठ, सिद्धान्त प्रिय संचालकों का अभिनन्दन करना अत्यावश्यक समझते हैं।**

हिन्दू धर्म की जो लघु व्यवसाय करनेवाली कुछ शूद्र जातियाँ हैं, उनके अपने आन्तरिक, 'ब्राह्मण्यत्त्व' का इतना घमण्ड है कि दलित जाति के व्यक्तियों का पैसा लेकर भी उनका काम करने से वे बिल्कुल इंकार कर देती हैं। धोबी कहता है—मैं कपड़े नहीं धोऊंगा, नाई कहता है—मैं हजामत नहीं करुंगा, नगाड़ेवाला कहता है—मैं बाजे नहीं बजाऊंगा। इस सबके पीछे पैसे न मिलने का कारण नहीं है, अपितु यह मिथ्या धारणा है कि दलितों की सेवा करने से हमारी प्रतिष्ठा भंग हो जाएगी।

इन लोगों को किसी न किसी ने, कभी न कभी तो यह सीख देनी ही चाहिए थी कि—'सम्मान केवल गुणों पर आश्रित है, जाति पर नहीं।' अच्छा हुआ कि यह शिक्षा दयानन्द कॉलेज लाहौर के व्यवस्थापकों ने दी। **कुल के मिथ्याभिमान का आश्रय लेकर गुणवान् को तिरस्कृत करने की कामना रखनेवाले गुणहीनों के दिलो-दिमाग़ को इस प्रकार ठिकाने लगाना तो अत्यन्त ही योग्य है।**

हमें यहाँ इतना ही बुरा प्रतीत होता है कि ये बेचारी, नासमझ, नादान, बावली, पागल जातियाँ 'ब्राह्मण्य' की उपासक होने की वजह से थोथी, पाखण्डों, साम्प्रदायिक धारणाओं के कारण अपने जीवन की सार्थकता को खो रहीं हैं। जीवन के वास्तविक तात्पर्य से वंचित हो रहीं हैं। पथभ्रष्ट होकर अपने सही जीवनानन्द को गवाँ रहीं हैं, पर इन निराधार हुए रसोइयों की किसी को भी किसी प्रकार चिन्ता करने का कोई कारण हमारी दृष्टि में शेष नहीं है। कहते हैं कि स्वार्थ की परवाह न करते हुए

[तथाकथित] धर्म की रक्षा करने के कारण उन रसोइयों की पीठ थपथपानेवाले 'भाला' पत्र के सम्पादक [श्री भास्कर बळवंत भोपटकर] उनका आजन्म पालन-पोषण करनेवाले हैं।''

सन्दर्भ :—(१) पाक्षिक पत्र 'बहिष्कृत भारत', दिनांक १५ जुलाई १९२७, वर्ष प्रथम, अंक—८। (२) डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर आणि अस्पृश्यांची चळवळ अभ्यासाची साधने। खंड-दोन। डॉ० बाबासाहेब आंबेडकरांचे 'बहिष्कृत भारत' (१९२७-१९२९) आणि 'मूकनायक' (१९२०)। सम्पादक—वसंत मून। प्रकाशक—एज्युकेशन डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र। संस्करण—१९९०। पृष्ठ ६२/१७, ६८/६ । अनुवाद—कुशलदेव शास्त्री।

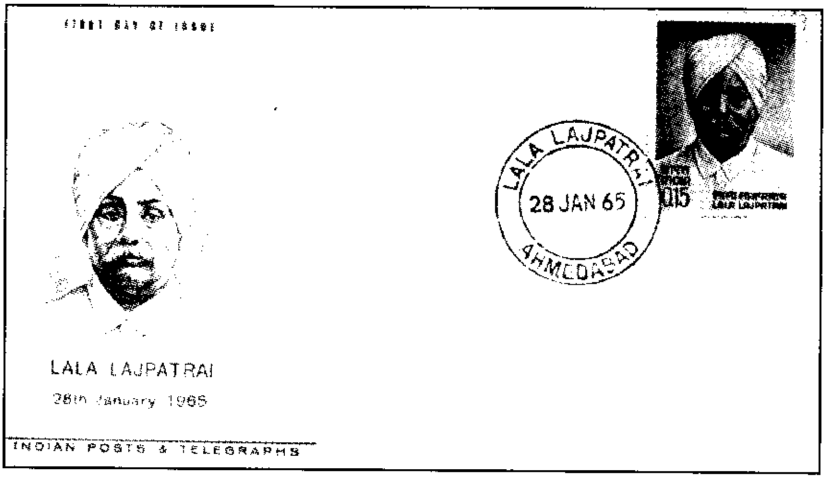
परिशिष्ट-४

डॉ० अम्बेडकर जी की लाला लाजपतराय जी को श्रद्धाञ्जली

यह तथ्य अंकित करते हुए हमें बहुत ही दुःख हो रहा है कि देशभक्त लाला लाजपतराय का विगत मास की १७ तारीख को अचानक हृदय क्रिया बन्द हो जाने से देहान्त हो गया। साइमन कमीशन के लाहौर आने पर उसे वापिस जाने के लिए कहनेवालों का जुलूस स्टेशन पर था, उसके अग्रिम भाग पर लाला जी उपस्थित थे। भीड़ को पीछे हटाने का प्रयत्न करते समय एक पुलिस अधिकारी ने लालाजी की छाती पर लाठी का वार किया। डॉक्टरों का यह मत है कि यह लाठी का वार ही लालाजी की हृदय क्रिया बन्द पड़ने का कारण सिद्ध हुआ। यदि यह सही है तो ऐसे उन्मत्त और राक्षसी वृत्ति के पुलिस अधिकारी की जितनी भी निन्दा की जाए, वह कम ही होगी।

खैर, वह कुछ भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि लालाजी की मौत के कारण देश का एक कर्मठ कार्य कुशल नेता नामशेष हो गया। भारतवर्ष में राजनीतिक नेताओं की कभी भी कमी नहीं रही, पर लालाजी जैसे प्रामाणिक वृत्ति के स्वार्थ त्यागी तथा

कृतसंकल्प कार्य के लिए तन-मन-धन अर्पित करनेवाले नेता अत्यन्त ही कम थे। नेतागिरी के लिए ललचाए और उसके लिए अपनी सदसद् विवेक बुद्धि शैतान या आसुरी प्रवृत्तियों को बेचनेवाले बहुत अधिक थे। इन नेताओं की कथनी-करनी की विसंगति लोगों के ध्यान में आती, तो ये उसे 'मेंटल रिजर्वेशन' की बात कहकर उससे छुटकारा पा लेते थे, पर लालाजी के जीवनक्रम में इस प्रकार की स्थिति नजर नहीं आती। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर जैसे दोहरे व्यक्तित्त्ववाले तथा श्री आयंगर छाप जैसे नेताओं की अभद्रता से लालाजी कोसों दूर थे। उनकी कार्यक्षमता अप्रतिम और महान् थी। लालाजी के चरित्र की विशेषता इस बात में है कि वे अधिक बड़बड़ और गड़बड़ न करते हुए बहुत ही सोच-विचारपूर्वक धैर्य से स्वीकार किये हुए कार्य को सम्पन्न करते थे।



लालाजी का जन्म सन् १८६५ में पंजाब प्रान्त के एक निर्धन वैश्य कुल में हुआ। **उनके पिता आर्यसमाजी थे। इसलिए उन्हें प्रारम्भ से ही उदारमतवाद की घुट्टी पिलायी गई थी।** आज आर्यसमाज को सनातन धर्म ने निगल लिया है, पर उस समय आर्यसमाज और सनातन धर्म का हमेशा का वैर या जानी दुश्मनी थी, क्योंकि इस युग में आर्यसमाज मुसलमानों के आक्रमणों

की अपेक्षा हिन्दू समाज के अन्तर्गत जातिभेदादि दोषों की ओर ही ज्यादा ध्यान देता था। इसलिए वह रूढ़िबद्ध पौराणिक लोगों को स्वाभाविक रूप से ही अप्रिय था।

पुराणमतवाद और आर्यसमाज के इस समर में लालाजी ने आर्यसमाज का पक्ष लिया था और उस समाज के सिद्धान्तों को सुदृढ़ और व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने कुछ मित्रों के सहयोग से सन् १८८६ में 'दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज (डी० ए० वी०)' की स्थापना की थी। उनके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ इसी घटना के साथ शुरु हुआ था। इस संस्था को शक्तिशाली बनाने के लिए उन्होंने अनथक मेहनत की थी और पुष्कल मात्रा में स्वार्थ त्याग भी किया था। आज पंजाब में इस संस्था की गणना एक प्रमुख शिक्षण संस्था के रूप में की जाती है।

इसके बाद वे राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने लगे, पर उन्होंने अन्य राजनीतिक आन्दोलनों के नेताओं की तरह राजनीतिक और सामाजिक कार्यों के इतरेतराश्रित आपसी सम्बन्धों का विच्छेद कर अपने अपंगत्व का प्रदर्शन कभी भी नहीं किया। दोनों भी दृष्टियों से वे क्रान्तिकारी थे। यह बात ध्यान में रखने लायक है कि राजनीतिक आन्दोलन में कदम रखने के कारण सरकार ने जब उन्हें अण्डमान की जेल में भेजा, तब बहुत से पुराणमतवादी लोगों को हर्ष हुआ था। इस प्रकार **ब्रिटिश सरकार और पौराणिक इन दोनों के विरोध को सहन करते हुए लालाजी ने अपना सार्वजनिक कार्यक्रम संचालित किया था।** पंजाब के कुछ स्पृश्यवर्गीय नेताओं द्वारा चलाये गये अस्पृश्यों के स्पृश्यीकरण (दलितोद्धार) के आन्दोलन में वे अन्तःकरण पूर्वक सहभागी होते थे। स्पृश्यवर्गीय लोगों द्वारा संचालित 'अस्पृश्योद्धार' के आन्दोलन से यदि हमें पूर्णतया सन्तोष न भी प्रतीत होता हो, फिर भी हमें इस बात में सन्देह नहीं कि लालाजी की सहानुभूति प्रामाणिकता से ओत-प्रोत थी। हमारी दृष्टि से वह परिपूर्ण न भी हो, फिर भी अविश्वसनीय तो बिल्कुल भी नहीं थी।

लालाजी उत्तम लेखक भी थे। सामाजिक और राजनीतिक विषयों से सम्बद्ध उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। 'दी पीपल' नामक अंग्रेजी पत्र भी वे निकालते थे। दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज के

अतिरिक्त उनके द्वारा स्थापित दूसरी संस्था का नाम 'सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया' है। 'सोसाइटी' की तरह इस संस्था की नियमावली बनाने के बावजूद इन दोनों में अन्तरङ्ग दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्तर है। मुम्बई की 'सोसाइटी' 'नरम दल' के कब्जे में होने के कारण उनके समस्त कार्यक्रम शांत एवं मंदगति से चालू हैं। राजनीतिक विषय में भी मंदगति और सामाजिक विषय में भी मंथर गति। एक कदम आगे बढ़ाने से पहले उस पर दस घण्टे तक विचार-विमर्श। कुछ इसी प्रकार का इस संस्था का कार्यक्रम है। इस संस्था के कतिपय सभासद व्यक्तिगत रूप से 'गरम', 'अग्रगामी' और 'प्रगतिशील' होंगे, पर सामूहिक रूप से उन्हें नरम दल की चौखट में ही घुटन महसूस करते हुए रहना अनिवार्य है। उसके विपरीत लाहौर की सोसाइटी को लालाजी जैसा तड़पदार-तेजस्वी नेतृत्त्व मिलने के कारण उसे सर्वांगीण प्रगतिपरक स्वरूप प्राप्त हुआ है। यह सोसाइटी सामाजिक और राजनीतिक विषय में एक जैसे प्रगतिशील कार्यकर्त्ता निर्माण करने का कार्य उत्साह और साहस के साथ कर रही है। इस संस्था के विकास के लिए उन्होंने काफी कष्ट सहन किये हैं। इस प्रकार लाला लाजपतरायजी का चरित्र विविधांगी है। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक आदि समस्त क्षेत्रों में वे अपना अनमोल योगदान दे गये हैं और उनके कालवश हो जाने के उपरान्त भी उनके बहुमुखी रचनात्मक कार्य उनके सचेतन स्मारक के रूप में चिरस्थायी एवं अमर रहेंगे।

—सन्दर्भ : (१) डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर चरित्र, खण्ड-२, पृष्ठ-१९७ लेखक—चांगदेव भवानराव खैरमोडे—द्वितीय आवृत्ति-१४ अक्टूबर १९९१, मूल्य-९०.००, प्रकाशक—सुगावा प्रकाशन—पुणे-महाराष्ट्र।

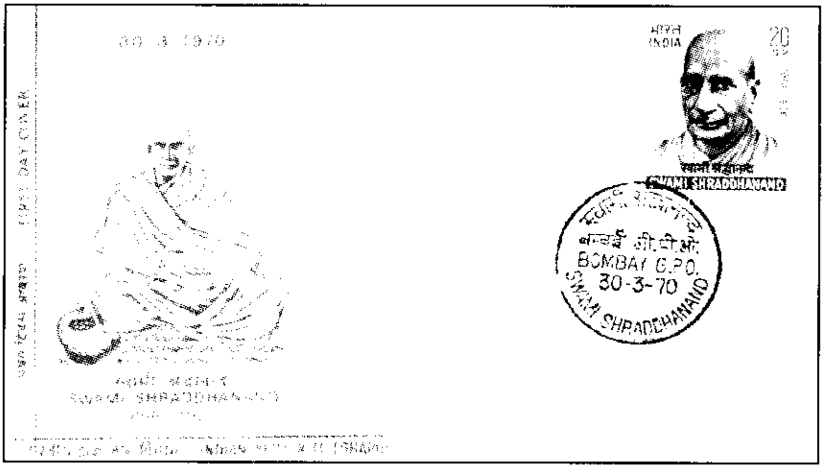
(२) बहिष्कृत भारत (मराठी साप्ताहिक) : सम्पादक : डॉ० भीमराव अम्बेडकर, दिनांक : ७ दिसम्बर १९२८।

(३) अनुवाद—कुशलदेव शास्त्री।

परिशिष्ट – ५

डॉ० अम्बेडकर जी द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द जी का अभिनन्दन

जो हिन्दू सुधारक अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रयत्न कर रहे थे। उनके विषय में बाबासाहब अम्बेडकर (सन् १९२० - २७) गौरवोद्‌गार अभिव्यक्त करते हुए नजर आते हैं तथा वे और अधिक कार्य करें, इस दृष्टि से आह्वान करते हुए भी दिखलाई देते हैं। इस सम्बन्ध में आर्यसमाज व उनके नेता स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सबसे पहले लिया जाना आवश्यक है।



"स्वामीजी दलितों के सर्वोत्तम हितकर्त्ता व हितचिन्तक थे" ये उद्‌गार डॉ० अम्बेडकर ने १९४५ के 'कांग्रेस और गान्धीजी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?' नामक ग्रन्थ में अभिव्यक्त किये हैं (पृ० २९-३०)। कांग्रेस में रहते हुए स्वामीजी ने जो कार्य किया उसकी उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक प्रशंसा की है। कांग्रेस ने अस्पृश्योद्धार के लिए १९२२ में एक समिति स्थापित की थी। उस समिति में स्वामीजी का समावेश था। अस्पृश्योद्धार के लिए उन्होंने कांग्रेस के सामने एक बहुत बड़ी योजना प्रस्तुत की थी और उसके लिए उन्होंने एक बहुत बड़ी निधि की भी माँग की थी, परन्तु उनकी माँग अस्वीकृत कर दी गई। अन्त में उन्होंने समिति से त्यागपत्र दे दिया (पृ० २९)। उक्त ग्रन्थ में स्वामीजी के विषय में

वे एक और स्थान पर कहते हैं, '**स्वामी श्रद्धानन्द ये एक एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अस्पृश्यता निवारण व दलितोद्धार के कार्यक्रम में रुचि ली थी**, उन्हें काम करने की बहुत इच्छा थी, पर उन्हें त्यागपत्र देने के लिए विवश होना पड़ा' (पृ० २२३)।

दिनांक—४.११.१९२८ के 'बहिष्कृत भारत' के सम्पादकीय लेख में बाबासाहब लिखते हैं—"आर्यसमाज यह समाज (ब्राह्मण नहीं, अपितु) ब्राह्मण्यत्व मुक्त हिन्दू धर्म का एक सुधारित-संशोधित संस्करण है। आर्यसमाज हिन्दू समाज के (जन्मना) चातुर्वर्ण्य को तोड़कर उसे एकवर्णी करने के लिए जन्मा आन्दोलन है, उसका साहस विलक्षण है" (९०-११२)। स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या दि०—२३.१२.१९२६ को हुई और उसके बाद आर्यसमाज के स्वरूप में परिवर्तन होने की आलोचना बाबासाहब ने की है, उपरोक्त सम्पादकीय में वे आगे लिखते हैं—"आर्यसमाज हिन्दू समाज को एक वर्णी करने के अपने मूल कार्य को भूलकर हिन्दू महासभा की तरह शुद्धि अभियान के पीछे लगा है, अब इन दोनों की इतनी घनिष्ठ मित्रता हो गई है कि हिन्दू महासभा का ध्येय आर्यसमाज का ध्येय बन गया है (पृ० ११२)। दिनांक—७.१०.१९२७ को अमरावती में सम्पन्न '**आर्य धर्म परिषद**' में चातुर्वर्ण्य का प्रस्ताव पारित होने की जानकारी बाबासाहब देते हैं, फिर भी उन्हें आर्यसमाज से आशा होने के कारण वे उसे उपदेश करते हुए लिखते हैं कि—"**आर्यसमाज ने हिन्दू महासभा की बातों में आने की अपेक्षा हिन्दू महासभा को अपने विचारों के अनुरूप बनाना चाहिए, इसी से आर्यसमाज के उद्देश्य की पूर्त होगी** (पृ० ११२)।"

दिनांक २२.४.१९२७ के 'बहिष्कृत भारत' में आर्यसमाज के शुद्धि कार्य की आलोचना करते हुए बाबासाहब कहते हैं—"शुद्धि करके विधर्म में गये लोगों को फिर से स्वीकार करने का एक हाथ से प्रयत्न करना और दूसरे हाथ से स्वधर्म में रहनेवालों के साथ चिढ़ाने जैसा आचरण करना, होश में रहनेवाले मनुष्यों का लक्षण नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्दजी के यशस्वी कार्य का यह स्मारक नहीं, अपितु उस महापुरुष द्वारा आरम्भ किये हुए कार्य का विकृत रूप है" (पृ० १५)। दिनांक—१५ मार्च १९२९ के

'बहिष्कृत भारत' के सम्पादकीय में भी उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजी का गौरव तथा आर्यसमाज की आलोचना की है। वे कहते हैं--- 'स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी के पवित्र आन्दोलन का इन ढोंगी लोगों ने गुड़-गोबर बना दिया है (२४४)।'

दिनांक २१.१२.१९२८ के 'बहिष्कृत भारत' के अंक में स्वामीजी का गौरव प्रस्तुत करनेवाला श्री पी० आर० लेलेजी का एक विशाल लेख प्रकाशित हुआ है। उसके अन्त में यह कहा गया है कि—''उन्हें (स्वामीजी को) श्रद्धाञ्जलि देने का अधिकार अपना अर्थात् प्रमुख रूप से बहिष्कृत व्यक्तियों (दलितों) का ही है। यदि अपनी उन्नति नहीं हुई, तो स्वामीजी को, उनके सच्चे हितैषी की आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी'' (२०५)। 'महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द को', 'हिन्दुओं के उद्धार की' तो अन्यों को 'ब्राह्मणों के उद्धार की', 'अहर्निश चिंता लगी हुई है'—प्राय: यह बाबासाहब कहते रहते थे (पृ० ३१)। इसी उपकृत व कृतज्ञ भावना से महाड़ में मार्च-१९२७ में सम्पन्न 'कुलाबा जिला बहिष्कृत परिषद्' में स्वामीजी को श्रद्धाञ्जलि देने का प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें कहा गया था—''श्रद्धानन्दजी के अमानुष हत्या के प्रति इस सभा को अत्यन्त दु:ख हो रहा है और उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्यक्रम के अनुसार हिन्दू जाति को अस्पृश्यता निर्मूलन का कार्य करना चाहिए'' (९)। (डॉ० आंबेडकरांचे सामाजिक धोरण: एक अभ्यास--लेखक-शेषराव मोरे, पृष्ठ ७५-७६ प्रथमावृत्ति (मराठी ग्रन्थ) जून, सन् १९९८)।

कांग्रेस द्वारा अस्पृश्यता निवारण का कार्य न करने के कारण कांग्रेस समिति से त्यागपत्र देनेवाले स्वामी श्रद्धानन्दजी का जो गौरव उन्होंने किया है, वह आपने देखा ही है, परन्तु १९४५ के 'कांग्रेस और गान्धीजी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया? ग्रन्थ में बाबासाहब ने गान्धीजी की आलोचना करते हुए लिखा है,-- ''स्वामी श्रद्धानन्दजी का पक्ष लेने की अपेक्षा गाँधीजी ने श्रद्धानन्दजी के विरोधी प्रतिगामी लोगों का पक्ष लिया है। (२९-२२६)'' इतना ही नहीं तो १९१७ का कांग्रेस का अस्पृश्यता निवारण का प्रस्ताव अर्थात् 'अस्पृश्यों से सम्बद्ध कपटनाट्य था' (२२) 'विशुद्ध राजनीति थी' (२६)। ऐसा डॉ० अम्बेडकर ने १९४५ के उपरोक्त

ग्रन्थ में कहा है—तत्रैव-८५।

दिनांक ३, जून १९२७ के 'बहिष्कृत भारत' के सम्पादकीय में बाबासाहब ने हिन्दू महासभा की स्थापना कब और कैसे हुई इस तथ्य की जानकारी दी है। 'कांग्रेस के पुराने सभासदों की जैसी सामाजिक परिषद, वैसी ही नये सभासदों की हिन्दू महासभा' ऐसा वे प्रतिपादित करते हैं (१०.४३)। आरम्भ में हिन्दू समाज के पुनर्गठन का कार्य सफलता के साथ सम्पन्न होगा। ऐसा सभी को प्रतीत होता था, पर समाज सुधार का कोई भी उपक्रम इस संस्था के हाथ से सम्पन्न नहीं हुआ--उसकी कार्यक्षमता शब्दों तक ही सीमित रही--यह आरोप हमारा नहीं, अपितु स्वामी श्रद्धानन्दजी ने किया है। बाबासाहब के अनुसार—इसी कारण से श्रद्धानन्दजी ने महासभा से त्यागपत्र दिया था। (४३)—तत्रैव-१८०।

परिशिष्ट-६

देश विभाजन और हैदराबाद मुक्ति संग्राम के विकट काल में डॉ० अम्बेडकरजी उत्सुकता से आर्यसमाजी नेताओं की प्रतीक्षा में थे।

शुद्धि का योग्य समय :

किसी आर्यसमाजी नेता को मुझसे मिलाइए

जातिभेद व विषमता की उपेक्षा करके शुद्धि अभियान के पाखण्डी पक्ष पर आक्षेप होते हुए भी अन्य परिस्थितियों में इच्छानुसार शुद्धि अथवा धर्मांतर करने के विषय में बाबासाहब को आपत्ति होने का कोई कारण नहीं था, प्राचीन काल में हिन्दू धर्म यह मिशनरी धर्म था, इन शब्दों में उन्होंने उसकी प्रशंसा ही की थी (५-४२३)। स्वयं उन्होंने धर्मान्तर का निर्णय घोषित किया था, तब शुद्धि अथवा धर्मांतर के प्रति वे सरसरी तौर पर नफरत की दृष्टि से नहीं देखते, अपितु उसकी गुणवत्ता के आधार पर उसका विचार करते हैं, जब शुद्धि की, अर्थात् धर्मांतरित व्यक्तियों को अपने मूल धर्म में लाने की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब उन्होंने उसका समर्थन ही किया था। देश-विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान के अस्पृश्यों को जबर्दस्ती मुस्लिम बनाया जा रहा था। वैसी ही दुर्दशा निजाम के हैदराबाद रियासत में शुरु हो गई थी। दिनांक — १८ नवम्बर १९४७ को परिपत्र निकालकर बाबासाहब ने इन

सबको भारत में या हिन्दू प्रान्त में आने का आह्वान किया था, इन सबकी शुद्धि कर फिर से हिन्दू धर्म में मिलाने की व्यवस्था करने की व पूर्ववत् उनके साथ आचरण करने का आश्वासन भी उन्होंने उन्हें दिया था (९-३४९)।

सन् १९४७ में जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़के, हिन्दुओं की मार से बचने के लिए मुसलमान चोटी रखने लगे, माथे पर तिलक लगाने लगे, तो इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री सोहनलाल शास्त्री से बाबासाहब ने कहा था—"किसी एक आर्यसमाजी नेता को मेरे पास ले आइए। मैं उन्हें समझाकर बतलाऊँगा कि, अब ऐसा समय आ गया है कि उन्हें (मुसलमानों को) हिन्दुओं में शामिल कर लेना चाहिए, वे बेचारे बच जाएँगे और हिन्दुओं की संख्या भी बढ़ेगी" (४१-१७२)।

'जाति विनाशक हिन्दू संगठन' को महत्त्व न देकर शुद्धि करनेवाले लोगों पर डॉ० बाबासाहब टूटकर पड़ते हैं, दिनांक—१५ मार्च १९२९ के 'बहिष्कृत भारत' के अंक में ऐसे लोगों को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—"संगठन व शुद्धि, अर्थात् संभाव्य लफंगेगिरी है" (२४४)। "स्पष्ट विरोध करनेवाले पुराण-मतवादी सह्य हैं, परन्तु शुद्धि संगठनवाले ढोंगी इनसे अधिक भयंकर है" ऐसा वे उन पर आक्षेप करते हैं। ये ही (ढोंगी लोग) सम्प्रति संगठन में घुस गये हैं। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी के पवित्र आन्दोलन को इन ढोगियों ने विकृत कर दिया है--उन्हें लात मारकर बाहर निकालने के सिवाय इस शुद्धि आन्दोलन में वास्तविक जोर नहीं आ पाएगा (२४४)। ४, नवम्बर १९२७ के 'बहिष्कृत भारत' के अंक में 'आर्यसमाज व हिन्दू महासभेची गट्टी' (मित्रता) नामक बाबासाहब की टिप्पणी इस सन्दर्भ में पठनीय है। "आर्यसमाज हिन्दू समाज को एकवर्णी करने के अपने मूल कार्य को भूलकर हिन्दू महासभा की तरह ही शुद्धि अभियान के पीछे लगा है।" इस प्रकार की जो उसमें उन्होंने आलोचना की है, वह अत्यन्त मुखर और स्पष्ट है (११२)। एकवर्णी हिन्दू समाज से उनका तात्पर्य हिन्दू संगठन से है। यह उनका समीकरण-सामंजस्य प्रत्येक पाठक को हरेक स्थान पर दिखलाई देगा।

सन्दर्भः—लेखक—श्री शेषराव मोरे : डॉ० आम्बेडकरांचे

सामाजिक धोरण-एक अभ्यास। प्रकाशक—राजहंस प्रकाशन १०२५, सदाशिव पेठ, पुणे-४११०३०, मराठी ग्रन्थ, प्रथमावृत्ति, जून-१९९८, मूल्य—३५०।

परिशिष्ट-७

समता के सेनानी :

छत्रपति शाहू, डॉ० अम्बेडकर और यशवंतराव चौहान

महाराष्ट्र के ज्येष्ठ इतिहास संशोधक व इतिहासकार डॉ० जयसिंहराव पवार के अनुसार (राजर्षि शाहू) महाराज ने सामाजिक क्रान्ति की मशाल डॉ० अम्बेडकर जी के हाथों में सौंपी थी। महार समाज का एक युवक अमेरिका से एम० ए०, पी-एच० डी० की शिक्षा पाकर आया है, यह जानकर वे अपूर्व आनन्द से भाव-विभोर हो मुम्बई परल स्थित बस्ती में उनसे मिलने गये और उन पर अपना हर्ष-स्नेह उंड़ेलते हुए बोले, ''अब मेरी चिन्ता दूर हो गई है। दलितों को उनका नेता मिल गया है।''

तत्पश्चात् कुछ समय बाद ही डॉ० अम्बेडकरजी को कोल्हापुर पधारने का निमन्त्रण देकर और उनके कोल्हापुर आने पर अपने रथ में बिठाकर शाहू महाराज उन्हें अपने 'सोनवली' कैम्प पर ले आये और अपनी पंक्ति में बिठलाकर उनके साथ उन्होंने सहभोजन किया। तदनन्तर उन्होंने अपने राजघराने की ओर से सम्मान और गौरव की रेशमी पगड़ी प्रदान कर उनका अभिनन्दन किया। इस अवसर पर डॉ० अम्बेडकर ने कहा था— ''छत्रपति शाहूजी ने सम्मान की जो रेशमी पगड़ी मेरे सिर पर धारण करवाई है, उसका मैं आदर रखूँगा।'' वस्तुतः डॉ० अम्बेडकरजी ने दलित-पतितों के उद्धार का कार्य केवल समस्त महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु अखिल भारतवर्ष में प्रसारित कर शाहू महाराज की रेशमी पगड़ी का सम्मान रखा। (राजर्षि शाहू छत्रपतिः एक मागोवा (एक सिंहावलोकन) पृष्ठ—२-३)।

स्थूल रूप से देखा जाए तो 'महार वर्ग' गाँव का 'वतनदार' था, परन्तु उसे इसके नाम पर पूरे गाँव की सेवा, नौकरी और

बन्धुआ मजदूरी करनी पड़ती थी। महार समाज को पीढ़ी-दर-पीढ़ी से गुलामी की जंजीरों में जकड़नेवाले 'महार वतन' को समाप्त करने का निश्चय कर शाहू महाराज ने १८ सितम्बर १९१८ को एक विशेष राजाज्ञा निकाली, जिससे उक्त समाज अन्यों की तरह 'स्वतन्त्र प्रजाजन' बन गया, और उसकी गुलामगिरी के दुर्दिन समाप्त हो गये। शाहू महाराज द्वारा 'महार वतन' को रद्द करने का सर्वाधिक आनन्द डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर को हुआ था। महारों ने इस गुलामगिरी का स्वयं त्याग करना चाहिए या सरकार ने इस 'महार-वतन' की गुलामी को कानून से नष्ट करना चाहिए, यह एक डॉ० अम्बेडकर की जबरदस्त मांग थी, जिसे १९२८ से १९५७ तक मुम्बई की अनेक सरकारें पूरी नहीं कर पाईं, उसे १९१८ में ही राजर्षि शाहू ने स्वयं स्फूर्ति से पूरा कर दिया था। मुम्बई राज्य में सन्-१९५८ में अपने-आपको शाहू महाराज और आर्यसमाजी शिक्षा संस्था का छात्र कहनेवाले (राजाराम कॉलेज कोल्हापुर के भूतपूर्व विद्यार्थी) मुख्यमन्त्री यशवंतराव बलवंतराव चौहान के कार्यकाल में महारों की उक्त गुलामगिरी नष्ट हुई (तत्रैव:—पृष्ठ २२-२३)।

परिशिष्ट-८

दलितोद्धार में दयानन्द के देवदूतों और आर्यसमाज के स्वयंसेवकों की भूमिका

चाँद (अछूत-विशेषाङ्क) में अभिव्यक्त दलितों की व्यथा-कथा के आधार पर

श्री नन्दकिशोर तिवारी के संवादकत्त्व में 'चाँद' नामक हिन्दी मासिक का 'अछूत'-विशेषाङ्क मई १९२७ में आज से ८१ वर्ष पूर्व इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। अङ्क के प्रधान सम्पादक नन्दकिशोर जी तिवारी और कम्पोजीटर बंशीललाल जी कोरी थे। विशेषाङ्क के मुख पृष्ठ पर एक श्वेत-श्याम चित्र छपा है जिसमें सरयू पारिण ब्राह्मष तिवारी और कोरी चमार एक थाली और एक टेबल पर सहभोज करते हुए दिखलाई दे रहें हैं। विशेषाङ्क की कुल पृष्ठ संख्या १९२ है। यह विशेषाङ्क दलितोद्धार व सामाजिक परिवर्तन के लिए समर्पित है। संपादक ने प्राक्कथन में अङ्क का

उद्देश्य सामाजिक अत्याचारों पर प्रकाश डालना और उसके विरूद्ध आन्दोलन करना बतलाया है।

पं० किशोरीदास वाजपेयी जैसे शास्त्रीय विद्वान् ने वाल्मीकि, रविदास, नाभा, नामदेव, कबीर-कूबा जैसे दलित सन्तों और भक्तों की महत्ता पर प्रकाश डाला है। धर्मान्तरण पर रोशनी डालने वाले हिन्दी कोविद जहूरषरुश ने 'अछूत की आत्मकथा' लिखी है। मुन्शी प्रेमचन्द की कालजयी कहानी 'मन्दिर' भी इस में प्रकाशित हुई है। दलितों के शुभचिंतक सी०एफ० एण्ड्रयूज और सच्चे दलितोद्धारक अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के पूरे एक-एक पृष्ठों पर चित्र छपे हैं। रेखाचित्रों द्वारा भीं तत्कालीन दलित संसार को साकार करने का यशस्वी प्रयत्न किया है।

'सम्पादकीय विचार' में महास प्रान्त के एक जिले में पाँच वर्षों में पचास हजार दलितों के ईसाई होने का उल्लेख है। अनेक रेखाचित्रों में एक रेखाचत्रि वह भी है जिसमें ख्वाजा हसन निजामी को सपने में दलित कलमा में ईमान लाते दिखलाई दे रहें हैं। दलितों में भी जागृति की लहर उत्पन्न हो रही है। संगठन और आत्म सम्मान का भाव जागृत होकर सुधारवाद की ओर झुकाव बढ़ रहा है। महाड़ (महाराष्ट्र) में डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर के आन्दोलन ने तथा कथित द्विजों की अनुदारता की सीमा को स्पष्ट कर दिया है।

चर्चित 'चाँद' विशेषाङ्क के अन्तिम परिच्छेद में दलितों की व्यथा-कथा को अभिव्यक्त करने वाले अनेक समाचार हैं। एकाधेक समाचारों में आर्यसमाज को 'दलितों को छाती लगा भाइयों, वरना ये लाल अन्यों के घर जाएँगे' के भाव से चिकित्सकवत् तल्लीन देखा जा सकता है। शूद्रों को यज्ञोवपीत देने, उनके साथ सहभोज करने, विभाजित गाँव के दरो-दीवार को 'एक-गाँव-एक पनघट' में बदलने तथा 'सर्वेंट्स ऑफ पुलिस सोसाइटी' 'दलितोद्धार कान्फ्रेंस में लाला लाजपतराय जी का सभापतित्त्व', आर्य प्रचारक लक्ष्मण राव ओघले जी का भाषण, बडोदरा नरेश सयाजी राव गायकवाड द्वारा दलितोद्धार सम्बन्धी कानून बनवाना, 'दलितों का आर्यसमाज में प्रवेश' और 'स्वामी श्रद्धानन्द दलितोद्धार

पाठशालाओं के शिक्षकों का सम्मेलन' आदि घटनाओं और गतिविधियों में आयसमाज के स्वयं सेवकों तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के देवदूतों को सक्रिय देखा जा सकता है।

माननीय डॉ० अम्बेडकर जी ने दलितों की व्यथा--कथाओं को अभिव्यक्त करते हुए जिन घटनाओं का आश्रय लिया है, उनमें से पचानवे (९५) प्रतिशत घटनाएँ उन्होंने 'तेज', 'अर्जुन', 'मिलाप', 'प्रताप' आदि आर्यसमाजी पत्रों से उद्धृत की हैं। (द्रष्टव्य—तत्कालीन इतिहास और परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन के लिए 'चाँद' (अछूत-विशेषाङ्क) मासिक में बहुमूल्य सामग्री है। सन् १९२७ के बाद १९९७ में 'राधाकृष्ण प्रकाशन' प्राइवेट लिमिटेड, २/३७--नेताजी सुभाषचन्द्र बोस मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पिन-११०००२ से इस दुर्लभ संदर्भ सामग्री को प्राप्त किया जा सकता है। पत्रकारिता साहित्य तो तत्युभीन समाज का सर्वाधिक दर्पण होता है। इस विशेषाङ्क का प्रत्येक पद, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक रचना और प्रत्येक रेखाचित्र अपने समय का अभिलेख एवं दस्तावेज है—

अस्पृश्यता-निवारण

भोला (बङ्गाल) में 'दास' जाति के कुछ हिन्दू रहते हैं, जिन्हें वहाँ के लोग दलित और अस्पृश्य समझते थे। प्रसन्नता की बात है अब वहाँ के हिन्दुओं ने अपने पुराने विचार बदल दिए हैं। हाल ही में वहाँ की 'बार लाइब्रेरी' में एक सहभोज हुआ था, जिसमें दास जाति के पुरुषों के साथ वहाँ के प्रसिद्ध ब्राह्मण, वैश्य और कायस्थों ने भी भोजन किया था।

अनुदारता की सीमा

बम्बई प्रान्त के महाद नामक गाँव में द्विजों द्वारा दलितों पर अत्याचार करने की खबर समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई है। कहा जाता है कि म्यूनिसिपैलिटी ने वहाँ के सार्वजनिक तालाबों को सर्व-साधारण के लिए खोल दिया था। इस पर वहाँ के दलित भाई एक तालाब पर स्नान करने के लिए जा रहे थे कि पीछे से कुछ द्विजों ने आक्रमण किया। जिससे बीस आदमी घायल हुए।

अस्पृश्यों से सहभोज

जबलपुर के कालीमाई के मन्दिर में हाल ही में अस्पृश्यों के साथ एक सहभोज हुआ था, जिसमें ब्राह्मण, वैश्य आदि उच्च जाति के कई सज्जन सम्मिलित हुए थे।

मेहतरों में जाग्रति

दिल्ली के मेहतरों में बराबर जाग्रति हो रही है। उन्होंने अपने मुहल्लों में वाल्मीकि सेवा-सङ्घ स्थापित कर लिए हैं, जिनके द्वारा वे अपनी जाति में नवजीवन का सञ्चार तथा अपनी देवियों की रक्षा करने का सङ्गठन कर रहे हैं। क्या हम आशा करें कि अन्य स्थान के मेहतर भाई भी दिल्ली का अनुकरण करेंगे?

सार्वजनिक जुलूसों में अछूत

अलीगढ़, बनारस आदि कई स्थानों से होली पर सार्वजनिक जुलूसों में अछूतों के सम्मिलित होने के समाचार प्राप्त हुए हैं। इस अवसर पर समस्त हिन्दू-भाइयों ने उन्हें गले लगाया और उन्हें मिठाई बाँटी।

मुसलमानों का अत्याचार

हाल ही का समाचार है कि बनारस में रैदास भाइयों की एक विराट सभा हो रही थी और उसमें जाति-सुधार तथा अधिकार-प्राप्ति के विषय में उपदेश हो रहे थे कि कोई चालीस लट्ठबन्द मुसलमानों ने उन पर आक्रमण किया। पुलीस के तुरन्त ही पहुँच जाने के कारण लड़ाई न हो सकी और गुण्डे भाग गए।

चमारों को अधिकार

भिवानी के हिन्दुओं ने चमारों को सार्वजनिक कुओं से पानी भरने की आज्ञा दे दी है। कई स्थानों पर जब वे पानी भरने पहुँचे, तो उनका हार्दिक स्वागत किया गया।

मन्दिरों में अछूत-प्रवेश

ढण्डा (राँची) के महन्त श्री रामशरणदास जी ने गत शिवरात्रि के अवसर पर अपने शिव-मन्दिर में अछूतों को प्रवेश करने की आज्ञा दे दी थी। अतः प्रातःकाल ही से बहुत से मेहतर और चमार भाई स्वच्छ वस्त्र पहनकर मन्दिर में गए और शिवरात्रि-

महोत्सव मनाया।

कानपूर में अछूतोद्धार

कानपुर में हिन्दू-बाल-सभा अछूतोद्धार का कार्य बड़ी तेजी से कर रही है। उसने कई मुहल्लों में अछूतों का सङ्गठन करने के उद्देश्य से अछूत-सभा स्थापित कर दी हैं। अछूत-पाठशालाएँ भी जगह-जगह स्थापित हो चुकी हैं और बराबर हो रही हैं।

चमार कॉन्फ्रेन्स

गाड़ीवाला (पञ्जाब) में हाल ही में एक विराट चमार-कॉन्फ्रेन्स हुई थी। उसमें सभी अछूत-जाति के लगभग दस हजार प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस कॉन्फ्रेन्स का प्रभाव इतना हुआ कि धीरे-धीरे हिन्दुओं की कट्टरता दूर होने लगी है और वहाँ के ग्यारह सार्वजनिक कुएँ दलित जातियों के लिए खोल दिए गए हैं।

अन्त्यजोद्धार-सम्बन्धी कानून

बड़ोदा राज्य की व्यवस्थापिका सभा में वहाँ के अन्त्यज-प्रतिनिधि श्री मूलदास भूधरदास जी ने एक मसविदा पेश किया है। इस कानून के अनुसार अन्त्यजों को सार्वजनिक एवं सरकारी स्कूलों, बस्तियों, पुस्तकालयों, कचहरियों, तालाबों, कुओं, देवालयों, धर्मशालाओं आदि से लाभ उठाने का उतना ही अधिकार होगा, जितना दूसरी जातियों को है। इसके अनुसार बेगार की प्रथा बिलकुल नष्ट कर दी जाएगी। अन्त्यज रोगियों की सेवा-सुश्रूषा सरकारी औषधालयों में उसी प्रकार की जाएगी, जिस प्रकार कि अन्य जातियों की। इतना ही नहीं, वरन् इस कानून के उल्लङ्घन करने वाले व्यक्ति यदि सरकारी नौकर हों, तो नौकरी से अलग कर दिया जाएगा और यदि कोई गैरसरकारी आदमी इसके विरुद्ध आचरण करेगा, तो ५००) रुपये तक अर्थ-दण्ड (जुर्माना) किया जाएगा।

विराट् सभा

हाल ही में कलकत्ता में अखिल भारतवर्षीय रैदास (चमार) सभा हुई थी। उसमें लगभग पाँच हजार रैदास भाई उपस्थित थे

और उच्चवर्ण के सज्जनों ने भी उसमें भाग लिया था। सभा में शराब और गो-मांस त्याग करने के सम्बन्ध में कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

रोहतक में जागृति

हाल ही में रोहतक के दानक लोगों की एक विराट् सभा स्वामी रामानन्द जी के सभापतित्व में हुई थी। इस सभा में राजपूताना, जीन्द, हिसार, करनाल, गुड़गाँव, दिल्ली आदि स्थानों के दानक कई सहस्र की संख्या में उपस्थित थे। सभा में कई एक विद्वानों के सुधार-सम्बन्धी भाषण हुए तथा कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

बरासत कॉन्फ्रेन्स

हाल ही में बरासत (बङ्गाल) अछूत कॉन्फ्रेन्स का तीसरा अधिवेशन श्री पीयूषकान्ति घोष (सम्पादक—अमृत बाजार पत्रिका) की अध्यक्षता में हुआ था। इस कॉन्फ्रेन्स में कलकत्ता आदि स्थानों के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। उसमें कई प्रस्तावों के अतिरिक्त अस्पृश्यता-निवारण, शिक्षा-प्रचार और दलितोद्धार सम्बन्धी ुपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इन प्रस्तावों का समर्थन उच्च वर्ण के नेताओं ने भी किया।

अछूतों का मन्दिर-प्रवेश

विक्रमपुर (ढाका) इलाके के प्रसिद्ध ग्राम वज्रयोगिनी में अस्पृश्यों को मन्दिर-प्रवेश का अधिकार दे दिया गया है। हाल ही में अस्पृश्यों ने मन्दिर में जाकर पूजा की और उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने उनके साथ बैठकर जल और मिष्ठान्न ग्रहण किया। उसी दिन सन्ध्या को एक विराट् सभा हुई, जिसमें अस्पृश्यता-निवारण पर जोरदार भाषण हुए और दलित भाइयों को समान अधिकार प्रदान करने पर जोर दिया गया।

गुड़गाँव दलितोद्धार कॉन्फ्रेन्स

हाल ही में गुड़गाँव जिला बल्लभगढ़ में दलितोद्धार कॉन्फ्रेन्स बड़े समारोह और उत्साह के साथ हुई। सभापति का आसन डॉक्टर मुञ्जे जी ने सुशोभित किया था तथा शाहपुराधीश श्री

सरनाहरसिंह, कुँवर रणञ्जयसिंह, डॉक्टर केशवदेव शास्त्री, स्वामी रामानन्द जी प्रभृति सज्जन भी कॉन्फ्रेन्स में सम्मिलित हुए थे और उसमें योग दिया था। कॉन्फ्रेन्स में अस्पृश्यता-निवारण, बेगार बन्द करने आदि के सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

अछूतों को अधिकार

हाल ही में बम्बई प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में प्रश्न करने पर वहाँ के स्वायत्त शासन-विभाग के मन्त्री महोदय ने सूचना दी है कि सरकार ने अपने कर्मचारियों को ताकीद कर दी है कि वे कौन्सिल के उस प्रस्ताव को अमल में लावें, जिसमें कि अछूत जातियों को सार्वजनिक कुएँ, तालाब और संस्थाएँ प्रयोग में लाने का अधिकार दिया है।

अमरावती में विराट् सभा

हाल ही में अमरावती के गणेश थियेटर में वहाँ की हिन्दू-सभा की ओर से एक सार्वजनिक सभा हुई थी, उसमें सभी विचार के हिन्दू सम्मिलित हुए थे। सभा में महारों की उपस्थिति कई हजार की थी। सभापति का आसन पर एम० बी० जोशी भूतपूर्व उप-प्रधान मध्य-प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा ने ग्रहण किया था। श्री पं० लक्ष्मणराव ओघले शास्त्री, श्री बी० जी० खापर्डे आदि माननीय व्यक्तियों ने अस्पृश्यता-निवारण पर जोरदार भाषण दिए। सभा में सब को तिल-गुड़ बाँटे गए, जिन्हें सब लोगों ने खाया।

सर्वेण्ट ऑफ प्युपिल सोसाइटी

सर्वेण्ट ऑफ प्युपिल सोसाइटी ने हाल ही में अपनी सात वर्ष की रिपोर्ट प्रकाशित की है। उससे प्रतीत होता है कि उक्त सोसाइटी ने पञ्जाब तथा संयुक्त-प्रान्त में अछूतोद्धार का बहुत कार्य किया है। जहाँ उच्च वर्ण के हिन्दू वाल्मीकि (भङ्गियों) की परछाईं तक से बचते थे, वहाँ लाहौर जैसे विशाल नगर में उनके बड़े-बड़े जुलूस निकलते हैं और उच्च वर्ण के हिन्दू उनका हार्दिक स्वागत करते हैं। इसी प्रकार कई स्थानों में उक्त सोसाइटी के प्रचार के फलस्वरूप हिन्दुओं में जागृति हो रही है। हाल ही में सोसाइटी का वार्षिक अधिवेशन बड़े-समारोह से मनाया गया था। जिसके साथ-साथ एक वाल्मीकि कॉन्फ्रेन्स भी हुई। कॉन्फ्रेन्स के

सभापति थे सुविख्यात दानवीर सेठ जमनालाल जी बजाज।

दलितोद्धार शिक्षक-सम्मेलन

गत १० अप्रैल को श्री श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा की पाठशालाओं के शिक्षकों का सम्मेलन बुलन्दशहर में हुआ था। सभापति का आसन प्रोफ़ेसर परमात्माशरण जी एम० ए० ने सुशोभित किया था। उसमें दलितों की शिक्षा के विषय में कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

अछूतों को अधिकार

कुम्भ के अवसर पर महामना पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म सभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसमें अछूत कहलाने वाली दलित जातियों के देवस्थान में प्रवेश करने और सार्वजनिक कुओं आदि से जल भरने में बाधा न देने के सम्बन्ध में कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

दलितों का आर्यसमाज-प्रवेश

हाल ही में बिजनौर जिले के गोविन्दपुर तथा सदाफल गाँव के लगभग ८०-९० चर्मकारों ने आर्यसमाज में प्रवेश किया। बिजनौर जिले की आर्यसमाज द्वारा उनका संस्कार कराया गया, जिसमें स्त्री-पुरुषों ने हवन किया। तत्पश्चात् सहभोज हुआ।

अखिल भारतीय अछूतोद्धार कॉन्फ्रेन्स

गत १७ अप्रैल को हिन्दू-महासभा के अवसर पर पञ्जाब-केशरी लाला लाजपतराय जी के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय अछूतोद्धार कॉन्फ्रेन्स हुई। स्वागताध्यक्ष ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन जारी करने को कहा और लाला लाजपतराय जी ने अपने भाषण में अछूत के कलङ्क की घोर निन्दा करते हुए उसे धो डालने की अपील की। उपरान्त अछूतोद्धार सम्बन्धी कई परमोपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उनमें दलित-श्रेणियों को शिक्षा एवं सरकारी नौकरी के विषय में समान अधिकार दिए जाने और सार्वजनिक कुओं को उनके लिए खोल देने का कहा गया है।

बनारस अछूत-सम्मेलन

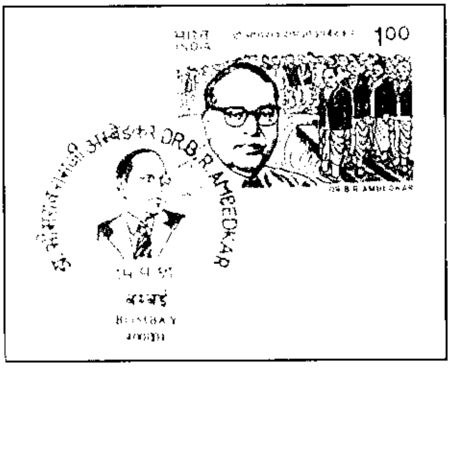
गत २४ अप्रैल को चौबेपुर में बनारस जिला अछूत-सम्मेलन श्री नरेन्द्रदेव जी के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ हुआ। इस अवसर पर श्री गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी, श्री बिहारीलाल जी चर्मकार आदि कई प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। सभापति महोदय ने अपने भाषण में कहा कि यदि हम अछूतों को नहीं अपनाएँगे, तो हमारे हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति एवं हिन्दू-सभ्यता का शीघ्र नाश हो जाएगा। सम्मेलन में अछूतोद्धार सम्बन्धी कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। जिनमें अछूतों को सार्वजनिक अधिकार देने एवं उनमें शिक्षा-प्रचार करने आदि पर जोर दिया गया।

अस्पृश्यता-निवारण का समर्थन

हाल ही में कलकत्ता में अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति श्री नेवटिया जी ने अपना भाषण देते हुए अग्रवाल-समाज से अस्पृश्य जाति को सुधारने तथा अस्पृश्यता को दूर करने को अपील की।

हिन्दू-महासभा और अछूत

गत ईस्टर की छुट्टियों में डॉक्टर मुञ्जे के सभा-सतीत्व में हिन्दू महासभा का दसवाँ अधिवेशन पटना में हुआ। सभापति महोदय ने धर्मशास्त्र के कथनों को उद्धृत करते हुए अस्पृश्यता की निःसारता प्रकट की। महासभा में अछूत जाति के सम्बन्ध में कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए और उन्हें सार्वजनिक अधिकार देने पर जोर दिया गया।



परिशिष्ट-९

मनुस्मृति के सन्दर्भ में डॉ० भीमराव अम्बेडकर और आर्यसमाज

माननीय डॉ० अम्बेडकरजी ने मनुस्मृति का कटु विरोध क्यों किया ? इस प्रश्न को गहराई से समझने के लिए उन अपमान जनक घटनाओं पर भी ध्यान देना होगा, जो अस्पृश्य समाज को स्पृश्य समाज की ओर से समय-समय पर सहन करनी पड़ीं। उदाहरण के तौर पर सन् १९२७ के अन्त में मनुस्मृति जलाई गई, उसी वर्ष के मार्च महीने में महाराष्ट्र के 'महाड़' (जिला-रायगढ़) नामक स्थान पर डॉ० अम्बेडकरजी के नेतृत्व में एक तालाब पर सामूहिक रूप में पानी पीने का साहसी सत्याग्रह किया गया। परिणामस्वरूप रूढ़िवादी ब्राह्मण समाज क्षुब्ध हो उठा। 'ज्ञानप्रकाश' समाचार पत्र के २७/३/१९२७ के अंक में दिये गये समाचार के अनुसार २१ मार्च १९२७ को वह तालाब तथाकथित वेदोक्त विधि से शुद्ध किया गया। उसी समय सवर्ण समाज द्वारा अस्पृश्य समाज की प्रतिशोधात्मक भावना से मारपीट भी की गई। व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में अनुभूत इस प्रकार की घटनाओं से डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर अतिशय दु:खी थे। उन्हें इस बात का दु:ख था कि अस्पृश्य समाज को एक सामान्य मनुष्य के नाते जो जीवन जीने का मौलिक अधिकार मिलना चाहिए, वह भी उसे मिला नहीं है।

डॉ० अम्बेडकरजी की यह धारणा बनी कि समाज में प्रचलित विषमतायुक्त धारणाओं की पृष्ठभूमि में 'मनुस्मृति' है, अत: उन्होंने २५ दिसम्बर १९२७ को महाड़ सत्याग्रह परिषद के अवसर पर रात ९ बजे प्रतीकात्मक रूप में मनुस्मृति जलवाई थी। मनुस्मृति चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त का समर्थन करती है और डॉ० अम्बेडकर के अनुसार जन्मना चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त विषमता की नींव पर आधारित है, इसलिए उन्होंने 'असमानता' का समर्थन करनेवाली मनुस्मृति के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिए उसे जलवाना आवश्यक समझा।

तत्पश्चात् आठ वर्ष की कालावधि में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि डॉ० अम्बेडकरजी ने विवश होकर धर्मान्तर की घोषणा कर दी। नासिक (महाराष्ट्र) के जिस कालाराम मन्दिर में स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिसम्बर १८७४ में व्याख्यान हुए थे, उसी कालाराम मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए माननीय डॉ० अम्बेडकर के मार्गदर्शन में ३ मार्च १९३० से अक्टूबर १९३५ तक लगभग ६ साल सत्याग्रह किया गया, फिर भी अस्पृश्य समाज को मन्दिर में प्रवेश नहीं मिल पाया। डॉ० अम्बेडकरजी ने नासिक जिले के ही येवला नगर में जो धर्मान्तर करने की घोषणा की, उसकी पृष्ठभूमि में भी ६ साल तक चली कालाराम मन्दिर की सत्याग्रह की घटना रही है। १३ अक्टूबर १९३५ को येवला में दिये अपने भाषण में डॉ० अम्बेडकरजी ने घोषणा की कि—'मैं हिन्दू के रूप में जन्मा जरूर हूँ, पर हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं।'

सामान्य और भक्त कोटि के अनुयायियों को ध्यान में रखकर तो यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति का विरोध किया, अतः आज उनके अनुयायी भी मनुस्मृति का विरोध कर रहे हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे स्वामी दयानन्द ने वेदानुकूल मनुस्मृति का समर्थन किया तो उनके आर्यसमाजी अनुयायी भी प्रक्षिप्त श्लोक विरहित विशुद्ध मनुस्मृति का समर्थन करते हुए दिखलाई देते हैं। अनुयायियों का मत अनुयायित्व पर आधारित होता है। ज्ञान की गहराई में बैठकर अपने मत को नेता के वैचारिक निष्कर्ष तक या उससे और आगे ले जाना सामान्य सामर्थ्यवाले व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है, इसलिए आठ प्रमाणों में से एक प्रमाण आप्त प्रमाण की शरण लेनी पड़ती है। दोनों भी समाज सुधारकों के अनुयायी सैद्धान्तिक तौर पर जन्मना वर्ण-व्यवस्था, जातिगत भेद-भाव और अस्पृश्यता के विरोधी हैं। दोनों भी पक्षों को अपने-अपने ढंग से कार्य करते हुए क्या-क्या हानि-लाभ हुआ? इन सब तथ्यों का विश्लेषण तो एक स्वतन्त्र पुस्तक का विषय होगा। आर्यसमाज के मनुस्मृति विषयक दृष्टिकोण को पौराणिक रूढ़िवादी प्रवृत्ति का आम हिन्दू आज भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

समाज-सुधार के पथ पर चलना वस्तुतः एक तपस्या है।

हम अपने नेताओं की जय-जयकार तो करने के लिए तैयार हैं, पर उनके तपोमय संघर्षशील पथ का अनुसरण करने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि हम सुख-सुविधा भोगी हैं। जय लगाना तो आसान है, पर सिद्धान्तों को व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में उतार पाना बड़ा कठिन है। सामान्य समाज तो एकदम नहीं, धीरे-धीरे बदलता है। जो द्विज वेदाध्ययन हेतु परिश्रम के लिए तैयार नहीं है, वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है। मनु के इस वचन (२.१.४३) को स्वामी दयानन्दजी ने भी उद्धृत किया है। स्वामीजी ने संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में लिखा है—

''सब संस्कारों में मधुर स्वर से वैदिक मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यभाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने ('ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना', 'स्वस्तिवाचन', 'शांतिकरण' और 'हवन' के) मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता, जड़, मंदमति, काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो, तो वह शूद्र है, अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे।'' (—सत्यार्थप्रकाश : सम्पादक-युधिष्ठिर मीमांसक—पृ० ३७)

स्वामीजी के उपरोक्त कथन का सार यह है कि 'संस्कारविधि' के सामान्य प्रकरण में निर्दिष्ट और संग्रहीत चारों वेदों से चुने हुए मन्त्रों का जो सामान्य पाठ नहीं कर सकता, वह शूद्र है। स्वामीजी की इस कसौटी पर आर्यसमाज के सदस्यों को कसा जाए तो अनेक आर्यसमाजियों की गणना तो शूद्र कोटि में ही करनी होगी। आर्यसमाज में चारों वेदों के सस्वर मन्त्रोच्चारण करनेवाले बड़ी मुश्किल से हाथ की उंगली पर गिने जाने योग्य कुछ विरले ही वेदपाठी होंगे।

आर्यसमाज के संस्थापक के उदात्त सपनों को साकार करने के सम्बन्ध में आर्यसमाज के सदस्यों का कद भी बौना साबित हो रहा है। व्यक्तित्व के बौने होने पर भी प्रगति की दिशा में अग्रसर होने के लिए ध्येय का उदात्त होना बहुत जरूरी है, उसे बौना करने

की आवश्यकता नहीं है। जब आर्यसमाजी ही वैदिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में असमर्थ साबित हो रहा है, तो आम हिन्दू या सामान्य व्यक्ति द्वारा आर्यसमाज की मान्यताओं को स्वीकार करने की बात तो अभी कोसों दूर है। हाँ, कुछ सीमा तक आर्यसमाज की बात को हिन्दुओं ने ही नहीं, अपितु समाज के अन्य मत मतान्तर के लोगों ने भी निश्चित रूप से स्वीकार किया है।

लगभग एक दशक से राजनीति में 'मनुवाद' शब्द बहुत अधिक प्रचलित हुआ है। राजनीति में जिन्होंने इसका प्रचलन किया है। वे मनुवाद को प्रगतिशीलता के अर्थ में नहीं, अपितु प्रतिगामीपन के पक्ष में प्रचलित करने में जुटे हुए हैं। जो यह मानकर चलते हैं कि मनुस्मृति में प्रक्षिप्त हुआ है, वे प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर मनुस्मृति स्वीकार करने योग्य मानते हैं और मनुवाद का अर्थ प्रगतिशीलता के पक्ष में ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार मनु महाराज की दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था जन्मना नहीं, अपितु गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार है। महिलाओं के साथ शूद्रों की भी शिक्षा और मान-सम्मान के मनु पक्षधर हैं। आर्यसमाज के क्षेत्र में मनुवाद का अर्थ प्रगतिशीलता ही है।

मनु समर्थक पक्ष

२४ जुलाई १८७५ को महाराष्ट्र की विद्यानगरी पुणे में इतिहास विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा था—'अब मनुजी का धर्मशास्त्र कौन-सी स्थिति में हैं, इसका विचार करना चाहिए। जैसे—ग्वाले लोग दूध में पानी डालकर उस दूध को बढ़ाते हैं और मोल लेनेवाले को फँसाते हैं। उसी प्रकार मानव धर्मशास्त्र की अवस्था हुई है। उसमें बहुत से दुष्ट क्षेपक (प्रक्षिप्त) श्लोक हैं, वे वस्तुतः भगवान् मनु के नहीं हैं। मनुस्मृति की पद्धति से मिलाकर देखने से वे श्लोक सर्वथैव अयोग्य दिखते हैं। मनु सदृश श्रेष्ठ पुरुष के ग्रन्थ में अपने स्वार्थ साधन के लिए चाहे जैसे वचनों को डालना बिल्कुल नीचता दिखलाना है।' (उपदेश मंजरी, सम्पादक, राजवीर शास्त्री: पृष्ठ-५७)। स्वामीजी के इस वक्तव्य की व्याख्या करते हुए पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने लिखा है कि 'पानी अगर गंदला है तो

उसके छानने का उपाय सोचना चाहिए। गंदलेपन को देखकर पानी से असहयोग करना तो मूर्खता होगी। विद्वानों को चाहिए कि अपने ग्रन्थों को शोधें, क्षेपकों को दूर करें, और जनता को फिर मनुरूपी भेषज (औषधि) से लाभ उठाने का अवसर देवें। (सार्वदेशिक : अगस्त-१९४८ पृष्ठ २५९-६०)।

डॉ० सोमदेव शास्त्री के अनुसार—'श्री मेधातिथि (नौवीं शताब्दी) की टीका से कुल्लूक भट्ट (बारहवीं शताब्दी) की टीका में १७० श्लोक अधिक हैं। तीन सौ वर्षों के समय में इन श्लोकों की मिलावट हो गई है। श्री मेधातिथि के समय पाँच सौ पाठभेद तथा श्री कुल्लूक भट्ट के समय के ६५० पाठभेदों से ज्ञात होता है कि मनुस्मृति में समय-समय पर प्रक्षेप होता रहा है।' (स्मृति सन्देश : पृष्ठ-७)। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के अनुसार कुछ श्लोक मेधातिथि और कुल्लूक भट्ट आदि के भाष्यों में नहीं हैं, पर वर्तमान मनुस्मृति में हैं। (मनुस्मृति : भूमिका और अनुवाद-पृष्ठ २४)।

मनुस्मृति आदि ग्रन्थों की तुलना में वेदों की प्रामाणिकता स्वामी दयानन्द की दृष्टि में सर्वोपरि थी। मनुस्मृति का प्रक्षिप्त भाग छोड़ने के बाद जो विशुद्ध वेदानुकूल भाग शेष रह जाता है, उसे ही उन्होंने प्रमाण योग्य माना है। स्वलिखित ग्रन्थों में उन्होंने मनुस्मृति के ५१४ श्लोकों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। महर्षि दयानन्द का अनुसरण करते हुए आर्य विद्वानों ने भी अपनी-अपनी समालोचनाओं के साथ मनुस्मृति के अनेक संस्करण प्रकाशित किये—पं० भीमसेन शर्मा, पं० आर्यमुनि, स्वामी दर्शनानन्द, पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार ने क्रमशः 'मानव धर्म शास्त्रम्' (१८९३-९९) मानवार्य्य भाष्य (१९१४) 'मनुस्मृति' (द्वितीय संस्करण-१९५९) 'मनुस्मृति भाषानुवाद (?) आदि टीकात्मक ग्रन्थों की रचना की। श्री जगन्नाथदास, महात्मा हंसराज, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), डॉ० सोमदेव शास्त्री आदि ने छात्रों एवं सामान्य जनता की दृष्टि में 'मानव-धर्म-विचार' (१८८३) 'मानव-धर्म-सार' (१८९०) 'वेदानुकूल संक्षिप्त मनुस्मृति' (१९११) 'स्मृति सन्देश' (१९९६) आदि मनुस्मृति के संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किये। पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, महात्मा मुंशीरामजी, पं० जगदेव

सिंहजी सिद्धान्ती, पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर तथा डॉ० सुरेन्द्र कुमारजी ने मनुस्मृति से सम्बन्धित मनु और मांस (१९१६) 'मानव धर्म शास्त्र तथा शासन पद्धतियाँ' (१९१७) 'मनु को स्वीकार करना होगा' (१९५१) 'मनुष्य मात्र का परम मित्र स्वायम्भुव मनु' (१९६२) तथा 'मनु का विरोध क्यों' (१९९५) और 'महर्षि मनु तथा डॉ० अम्बेडकर' ( ) नामक रचनाएँ लिखीं।

मनुस्मृति में से प्रक्षिप्त श्लोकों को छाँटने का उल्लेखनीय कार्य पं० तुलसीराम स्वामी, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० सत्यकाम सिद्धान्त शास्त्री और डॉ० सुरेन्द्र कुमारजी ने क्रमशः 'मनुस्मृति भाष्य' (१९०८-१९२२) 'आर्ष मनुस्मृति' (१९१७) 'मनुस्मृतिः भूमिका एवं भाष्य' (१९३८) वैदिक मनुस्मृति (१९४८) और 'सम्पूर्ण मनुस्मृति' (१९८१) के माध्यम से किया। डॉ० सुरेन्द्रकुमार ने 'सम्पूर्ण मनुस्मृति' में प्रक्षिप्त श्लोकों को विशेष चिह्न के साथ प्रकाशित किया है और 'विशुद्ध मनुस्मृति' (१९८१) में प्रक्षिप्त समझे गये श्लोकों को प्रकाशित करना ही अनावश्यक समझा है। उनके द्वारा सम्पादित 'मनुस्मृति' (संस्करण १९९५) के अनुसार मनुस्मृति के कुल श्लोकों की संख्या २६८५ है, इनमें मौलिक श्लोक १२१४ और प्रक्षिप्त श्लोक १४७१ हैं। उन्होंने विषय विरोध, प्रसंग विरोध, अन्तर् (परस्पर) विरोध, पुनरुक्तियाँ, शैली विरोध, अवान्तर विरोध, वेद विरोध नामक सात आधारों पर १४७१ श्लोकों को सप्रमाण प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। डॉ० भवानीलाल भारतीय के अनुसार मनुस्मृति के विस्तृत भाष्य में डॉ० सुरेन्द्रकुमारजी ने प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् करने के लिए विशिष्ट तार्किक प्रक्रिया को अपनाया है। डॉ० सोमदेव शास्त्री के शब्दों में 'मनुस्मृति' का तलस्पर्शी अध्ययन करनेवाले डॉ० सुरेन्द्र कुमार ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से उसमें विद्यमान प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् करके मनुस्मृति का यथार्थ स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का श्लाघनीय कार्य किया है। पं० राजवीर शास्त्री की दृष्टि में—'**यदि मनुस्मृति में से प्रक्षिप्त निकालने का कार्य महर्षि के भक्त आर्यों के द्वारा पहले से सम्पन्न हो जाता तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश का संविधान बनानेवाले डॉ० अम्बेडकर जैसे व्यक्तियों को भी**

इस ग्रन्थ के प्रति अपनी मिथ्या धारणा को अवश्य ही बदलना पड़ता। इस उपेक्षावृत्ति के लिए हम आर्यबंधु भी कम दोषी नहीं है।' (विशुद्ध मनुस्मृति : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली : २६ दिसम्बर १८७१ : पृष्ठ—३-७)।

मनु विरोधी पक्ष

माननीय डॉ० अम्बेडकर ने गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा फुले की त्रिमूर्ति का शिष्यत्व स्वीकार कर उन्हें अपना गुरु माना है। फुलेजी ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर मनुस्मृति का विरोध किया है। वे अपने 'तृतीय रत्न' (लेखनकाल सन् १८५५ तथा प्रकाशन काल १८७९) नाटक में रूढ़िवादी ब्राह्मणों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं—'आपके ही पूर्वज मनु के कानून दिखाकर हमें यह कहते रहे कि आप लोगों को पढ़ने का अधिकार नहीं है, फिर क्या वे लोग मनु का कानून तोड़कर अपने बच्चों को स्कूल भेजते? तब आप लोगों ने उन्हें पढ़ने नहीं दिया, अब उन्हीं के वंशजों में ऐसे लोग उत्पन्न हो रहे हैं, जो मनु के कानून की उपेक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। (महात्मा फुले समग्र वाङ्मय—पृ० २८)। महात्मा फुलेजी का दूसरा ग्रन्थ हैं—'गुलामगिरी' (१८७३) इसमें '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' मन्त्र पर फुलेजी ने अपनी ग्राम्य शैली में व्यंग्य किया है। वे लिखते हैं कि ब्राह्मण को जन्म देनेवाला ब्रह्मा का मुख ऋतु (आर्तव) काल में चार दिन अलग-थलग बैठता था या भस्म लगाकर घर के काम-काज करता था, इस विषय में मनु ने कुछ लिखा है या नहीं। (तत्रैव-पृ० १४२)।' '**शेतकऱ्याचा आसूड**' (अर्थात्—किसान का चाबुक) (१८८३) नामक ग्रन्थ में महात्मा फुलेजी ने लिखा है—ब्राह्मणों ने मनु संहिता जैसा मतलबी ग्रन्थ लिखकर शूद्र किसानों के विद्याध्ययन पर प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें लूटा है। (तत्रैव—पृष्ठ २६५)। इसी प्रकार अपने 'सत्सार' (१८८५) नामक ग्रन्थ में तो उन्होंने यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि 'मनुस्मृति' ने शूद्रातिशूद्रों का किस प्रकार सर्वनाश किया है? (तत्रैव-३५४)। अपने अन्तिम ग्रन्थ 'सार्वजनिक सत्य धर्म' (१८९१) में वे लिखते हैं—"यदि शूद्रातिशूद्रों नें भट्ट ब्राह्मणों के साथ मनुसंहिता के समान उसी प्रकार का नीचतापूर्ण व्यवहार करना शुरु कर दिया,

जैसा वे आज तक उनके साथ करते आये हैं, तो उन्हें कैसा प्रतीत होगा ?'' (तत्रैव-४५१)।

महात्मा फुलेजी की शैली में ही डॉ० बाबासाहब अम्बेडकरजी ने अपने 'मनु एण्ड द शूद्राज' लेख के अन्त में लिखा है कि 'ब्राह्मण को शूद्र के स्थान पर बिठलाया जाएगा, तभी मनुप्रणीत निर्लज्ज तथा विकृत मानवधर्म का निवारण हो सकता है।' (राइटिंग्ज एण्ड स्पीचेस ऑफ डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर— पृ० ७१९)। 'रिडल्स इन हिन्दूइज्म' के तृतीय खण्ड का 'मॉडल ऑफ द हाउस' नामक प्रकरण मनुस्मृति पर आधारित है। उसमें डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं, 'मनु प्रणीत वर्ण व्यवस्था में विद्रोह करने का अधिकार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को है, शूद्र को नहीं, किन्तु समझ लो यदि क्षत्रिय शस्त्रों की सहायता से इस व्यवस्था को मिटाने के लिए विद्रोह करने के वास्ते खड़ा हो जाए तो उन्हें दण्डित करने के लिए मनु ने ब्राह्मण को शस्त्र उठाने की अनुमति दी है। वर्ण-व्यवस्था को अबाधित रखने के लिए मनु ने अपनी मूलभूत नीति में परिवर्तन किया है, अर्थात् ब्राह्मण को शस्त्र ग्रहण करने की अनुमति देने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई है। मनु प्रणीत वर्ण-व्यवस्था से त्रिवर्ण ही लाभान्वित है। उससे शूद्र को कोई लाभ नहीं। त्रिवर्णों में भी ब्राह्मण सर्वाधिक लाभान्वित है। डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में मनु पक्षपाती हैं, अतः विषमता फैलानेवाली मनुस्मृति का विरोध वे अत्यावश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी मानते हैं।'

जयपुर में स्थापित मनु प्रतिमा विषयक वाद-विवाद

मनुस्मृति विषयक आर्यसमाज तथा डॉ० अम्बेडकर की भूमिकाओं के इस स्थूल अध्ययन के बाद एक नजर जयपुर उच्च न्यायालय में स्थापित उस मनु प्रतिमा पर भी डाल लेते हैं जिस कारण मनु, मनुस्मृति या मनुवाद विषयक चर्चा समाचार-पत्रों के माध्यम से और अधिक तीव्र स्वर में हुई है। घटना की पृष्ठभूमि निम्न प्रकार है—

२ मई १९८७ को जयपुर उच्च न्यायालय के सन्निकट स्थिति चौक में तत्कालीन राष्ट्रपति आर० वेंकटरमण के कर-

कमलों से डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर की प्रतिमा का अनावरण हुआ। कहते हैं, यातायात में असुविधा होने के बहाने बहुत दिनों तक इस प्रतिमा को कोई समुचित स्थान ही नहीं मिल पाया था। तत्पश्चात् लगभग दो साल बाद जयपुर के प्रथम वर्ग के न्यायाधिकारी श्री पद्मकुमार जैन ने उच्च न्यायालय परिसर का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए मनु की प्रतिमा स्थापित करने का लिखित अनुरोध मुख्य न्यायाधीश श्री नरेन्द्र कासलीवालजी से २ फरवरी १९८९ को किया। उनकी सम्मति तथा कांग्रेस के महामन्त्री श्री राजकुमार काला और स्थानीय लाइंस क्लब की सहायता से ४ फुट ऊँची प्रतिमा बनवाई गई और उसे न्यायालय के सामने चबूतरे पर २८ जून १९८९ को स्थापित कर दिया गया।

उक्त समाचार के फैलते ही दलित समाज में प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने विविध संगठनों की सहायता से 'मनु प्रतिमा हटाओ संघर्ष समिति' बनाई, जो श्री रामनाथ आर्य के नेतृत्व में क्रियाशील हुई थी। १० जुलाई से प्रतिमा हटाओ आन्दोलन शुरु हुआ। इसी बीच श्री नरेन्द्र मोहन कासलीवाल सेवानिवृत्त हुए और उनके स्थान पर श्री मिलापचन्द जैन की नियुक्ति हुई। २८, जुलाई को जोधपुर में उच्च न्यायालय के १८ न्यायाधीशों की एक बैठक हुई, जिसमें निर्णय किया गया कि मनु के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार का वाद-विवाद निर्माण न हो, अत: मनु की प्रतिमा ही हटा दी जाए। पर शासन द्वारा इस निर्णय के क्रियान्वित करने से पहले ही बजरंग दल के धर्मेन्द्र महाराज और सोमेन्द्र शर्मा ने न्यायालय में उक्त निर्णय के विरुद्ध स्थगन याचिका प्रस्तुत की, जिसे न्यायाधीश श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल ने दखिल कर लिया, और कालान्तर में निर्णय देते हुए कहा—'इस समस्या का हल प्रशासनिक तौर पर किया जाना चाहिए। मनु के पीछे व्यापक जन-मानस है और विविध प्रकार की महत्त्वपूर्ण मान्यताएँ हैं। इस केस में मनु प्रतिमा को यथावत् रखने के पक्ष में एडवोकेट श्री सी० के० गर्ग सक्रिय रहे तो 'मनु प्रतिमा हटाओ संघर्ष समिति' के वकील श्री भँवर बागड़ी थे। इसी बीच सौ वकीलों ने इस आशय का अर्ज दे दिया कि—मनु की प्रतिमा हटाने से मानवता का अपमान होगा। इस सन्दर्भ में आर्यसमाज नया बाँस, दिल्ली के श्री धर्मपाल आर्य,

झज्जर–हरियाणा के प्रा० डॉ० श्री सुरेन्द्रकुमार और परोपकारिणी सभा—अजमेर के संयुक्त मंत्री प्रो० डॉ० धर्मवीर आदि ने मनु सम्मान को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए संरक्षणात्मक मोर्चे की भूमिका निभायी। मनु प्रतिष्ठा संघर्ष समिति ने आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, डॉ० सुरेन्द्रकुमार द्वारा लिखित अनुसंधानात्मक मनुस्मृति को न्यायालय में प्रस्तुत कर प्रतिमा को यथावत् बनाये रखने के लिए स्थगनादेश प्राप्त कर लिया।'

उपरोक्त घटना के ११ साल बाद लगा कि यह मसला अब शान्त हो गया है, पर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता डॉ० बाबा आढ़ाव ने महाड़ से जयपुर तक 'मनु प्रतिमा हटाओ यात्रा' निकाली, जो २६ जनवरी २००० को महाड़ (महाराष्ट्र) से चली और २५ मार्च को जयपुर पहुँची। जयपुर के डॉ० अम्बेडकर चौक पर धरना देते हुए इन्होंने नारा दिया—'मनुवाद मिटाओ, मनु प्रतिमा हटाओ, अम्बेडकर प्रतिमा लगाओ' इसी बीच श्री शरद पवार के सहयोग से महाराष्ट्र से चुनकर आये रिपब्लिकन पार्टी के संसद सदस्य श्री रामदास आठवले के नेतृत्व में एक यात्रा दिनांक ८ मार्च २००० को उक्त माँग को लेकर ही निकाली गई थी, जिसने राज्यपाल एवं मुख्यमन्त्री को मनु प्रतिमा हटाने का पक्ष में ज्ञापन दिया।

प्रतिमाओं को हटाने और बिठाने के पक्ष में कोई भी नेतृत्व जितनी आसानी और उत्साह से भीड़ इकट्ठी कर लेता है। उतनी आसानी और उत्साह से उस भीड़ को वह शास्त्राध्ययन की दिशा में उन्मुख नहीं कर पाता। निष्पक्ष, दलविहीन, स्वार्थी राजनीति से ऊपर उठकर तलस्पर्शी अध्ययन के माध्यम से उस भीड़ को समस्या की गहराई में जाने की प्रेरणा नहीं दी जाती। **स्वार्थी राजनीति ने हर मुख्य सवाल को गौण और हर गौण समस्या को मुख्य बना दिया है। हिन्दी साहित्यकार अज्ञेयजी के शब्दों में—'आत्मा का तेज हमें सहन नहीं होता, अस्थियों के लिए हम मंजुषाएँ बनाते हैं।'** (गद्य के विविध रंग–पृष्ठ ११७ : सम्पादक—दूधनाथसिंह)।

डॉ० मदनमोहन जावलिया के अनुसार—'धर्मशास्त्रकार, विधि प्रणेता तथा वेदानुमोदित स्मृति प्रदाता महर्षि मनु पर पंक

उछालनेवाले लोग राजनीति, आंबेडकरवादी बौद्ध मत और न ही दलितों का कोई भला कर रहे हैं। मनु की मूर्ति हटाने एवं उसके स्थान पर अम्बेडकर की मूर्ति लगाने की माँग हठधर्मिता एवं अलोकतान्त्रिकता की परिचायक है। न्यायालय में मनु ही क्या राम-कृष्ण, शंकराचार्य-बुद्ध, महावीर, अम्बेडकर की भी मूर्तियाँ लगें। पर खेद है कि दलितों के नाम से निर्मित दलों एवं राजनीतिक दलों ने 'दलित वोट बैंक' को हथियाने के लोभ में सवर्ण-हिन्दुओं को अपमानित करने का कुचक्र रचा है, जिसमें प्रत्यक्ष-परोक्षरूप से साम्यवादी तथा मुस्लिम संगठन भी शामिल हो गये हैं। हमारी दृष्टि में राजनीतिक व्यूह रचकर भोले-निर्धन हिन्दुओं और तथाकथित दलितों को बहकाने का मार्ग त्यागकर इन तथाकथित दलित नेताओं को शुद्ध हृदय से विशुद्ध मनुस्मृति का अध्ययन करना चाहिए। स्थान-स्थान पर मूर्तियों के अम्बार लगाने की अपेक्षा उस शक्ति को शास्त्राध्ययन की परिपाटी में लगाना ज्यादा जरूरी है। राजनीति के नाम पर अराजकता पूर्ण नीति से पृथक् होना अत्यावश्यक है।' (लेख—राजर्षि मनु, मनुस्मृति और मनु की प्रतिमा : आर्यजगत्-साप्तहिक : २१ मई २०००, पृष्ठ-५)।

महाराष्ट्र के महाड़ से राजस्थान के जयपुर तक की १६०० किलोमीटर अन्तर की 'मनु प्रतिमा हटाओ यात्रा' निकालनेवाले डॉ० बाबा आढाव ने अपने आक्रोश भरे तेवर में यह प्रतिप्रश्न उपस्थित किया है कि—स्त्रियों तथा शूद्रातिशूद्रों से मनुस्मृति पढ़े जाने संबंधी धृष्टतापूर्वक सवाल भला पूछे ही कैसे जाते हैं?' (पुरोगामी सत्यशोधक : त्रैमासिक-अक्टूबर से मार्च २००० तक का संयुक्त अंक-पृष्ठ ४५)। डॉ० आढाव का उक्त कथन वर्तमान सन्दर्भ में ठीक नहीं लगता। जब महात्मा फुले और स्वामी दयानन्द के प्रयत्नों से अध्ययन-अध्यापन के दरवाजे स्त्री शूद्रों के लिए भी खुल गये हैं, तब पठन-पाठन की परम्परा को संप्रति क्यों न प्रोत्साहित किया जाए? **डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर के अनुयायी हों, या आर्यसमाज के अथवा अन्य किसी संगठन के सभी लोगों द्वारा शास्त्राध्ययन की परम्परा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तभी वैचारिक मतभेद रखते हुए भी वाद-विवाद के स्थान पर वाद-संवाद की स्थिति बन सकती है।**

कम-से-कम जिन मुद्दों पर हम सहमत हैं, उन पर तो कदम-से-कदम मिलाकर प्रगति की दिशा में एक साथ आगे बढ़ सकते हैं। एक और एक दो नहीं, अपितु ग्यारह बनकर समाज-सुधार के रथ और दलितोद्धार के चक्र को और अधिक गति देने में समर्थ हो सकते हैं।

मतभेद होते हुए भी जब हमारे प्रेरणास्रोत महात्मा फुले और स्वामी दयानन्द पुणे में एक-दूसरे को सहयोग करते हुए दिखलाई देते हैं, जब उनमें भाईचारा था, एक- दूसरे को समझने की तैयारी थी तो हम अनुयायियों में भी वह सहयोग भावना क्यों न हो ? स्वामी दयानन्द १६ जुलाई १८७५ को महात्मा फुलेजी के जुनांगज पेठ स्थित शूद्रातिशूद्रों के स्कूल में वेदोपदेश दे रहें हैं, तो महात्मा फुले बुधवार पेठ और छावनी में जाकर स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रवचन सुन रहे हैं। ५ सितम्बर १८७५ को पुणे में जब स्वामी दयानन्द सरस्वती की विदाई के उपलक्ष्य में शोभा यात्रा निकाली जा रही थी, तो प्रतिगामी शक्तियाँ किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाएँ, इसलिए महात्मा फुले अपने अखाड़े के नौजवान अनुयायियों के साथ सिर हथेली पर लेकर चल रहें हैं। आखिर डॉ० अम्बेडकर भी आर्यसमाज को उदारमतवाद की घुट्टी पिलानेवाली संस्था मानते थे। पुणे में डॉ० अम्बेडकर की प्रेरणा से संचालित '**पर्वती मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह**' **में आर्यसमाज के स्वामी योगानन्दजी १३ अक्टूबर १९२९ को रूढ़िवादियों के प्रहार से क्षत-विक्षत होना पसन्द करते हैं, पर आन्दोलन से विमुख नहीं होते** (बहिष्कृत भारत-साप्ताहिक १५ नवम्बर १९२९, पृष्ठ १०)।

सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री आर्यसमाजी संस्कारों में पालित-पोषित थे। उनके पिताजी अपने समय में 'नमस्तेजी' के नाम से प्रसिद्ध रहे। चतुरसेन शास्त्री ने 'अम्बपालिका,' 'प्रबुद्ध,' 'भिक्षुराज' जैसी बौद्ध कहानियाँ लिखीं और बुद्धकालीन इतिहास रस प्रस्तुत करनेवाला 'वैशाली की नगर वधू' जैसा बौद्ध उपन्यास लिखा। काशी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री शिवप्रसाद गुप्त ने भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेश में उस समय का वर्णन किया है, जब एक ही घर में ब्राह्मण और बौद्ध

रहा करते थे। (पृष्ठ-८)। महात्मा फुलेजी ने भी 'सार्वजनिक सत्य धर्म' पुस्तक में ऐसे घर की कल्पना की है, जिसमें एक ही परिवार के सदस्य अलग-अलग साम्प्रदायिक विचारधारा के होते हुए भी सद्भाव-समन्वय और भाईचारे से रह रहे हैं। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कभी सोचा था 'आर्यसमाज के निराकार ईश्वर और बुद्ध को साथ-साथ रखूँ' (जिनका मैं कृतज्ञ : राहुल सांकृत्यायन-पृष्ठ १६४) प्रा० राजेन्द्रजी जिज्ञासु ने समाज में भाईचारे की प्राथमिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कभी लिखा था, 'उलझन भरी दार्शनिक विषयों को सुलझाने का काम हमें अपने-अपने क्षेत्र के विद्वान् बाबाओं पर छोड़ देना चाहिए।' मुख्य उद्देश्य तो हर हाल में आपसी स्नेहभाव, शान्ति और भाईचारे को बनाये रखना ही होना चाहिए। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—"**जब तक वादी-प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेखन न किया जाए, तब तक सत्य-असत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता, तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दु:ख उठाना पड़ता है, इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ, मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है, यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।**" (सत्यार्थप्रकाश : सम्पादक-युधिष्ठिर मीमांसक : द्वादश समुल्लास : पृष्ठ ६०७-८)।

इस प्रकार के संवाद हेतु वातावरण उत्पन्न करने के लिए सामाजिक सौहार्द अत्यावश्यक है, अत: यह आशा की जाती है कि सामाजिक सौहार्द को और अधिक व्यापक बनाने में समाज-सुधार और प्रगतिशीलता में आस्था रखनेवाले स्वामी दयानन्द और डॉ० बाबासाहब अम्बेडकर के अनुयायी मिल-जुलकर अपना-अपना योगदान देंगे। तभी शब्द, वेद प्रामाण्यवाद, विषमता के विविध रूप, मनुस्मृति, पुनर्जन्म, आरक्षण, आस्तिकता जैसे गहन विषयों पर सुसंवाद और अंतिम निर्णय होना सम्भव है।

क्षेपकों का दोष मनु के सिर नहीं

–पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

"हम आर्यसमाज के बाहर देखते हैं कि मनुस्मृति का खुल्लमखुल्ला अपमान किया जाता है। मनु को भेषज समझने के स्थान पर लोग विष समझते हैं। समस्त हिन्दू समाज के दुर्गुणों का कारण मनु को समझा जाता है। मनुस्मृतियाँ कई स्थानों पर सार्वजनिक रूप से जलाई गई हैं, जिससे मनु के लिए जो आदर के भाव लोगों में विद्यमान हैं, उनका सर्वनाश हो जाए। बहुत-से लोग इसी बात में अपना गौरव समझते हैं कि मनु के प्रति घृणा उत्पन्न की जाए। इसका मुख्य कारण है कि वह विष जो समय-समय पर मनुस्मृति में क्षेपक के रूप में मिला दिया गया और जिसने मनु के उपदेशों को विषाक्त अन्न के समान बना दिया। स्त्री और शूद्रों के पददलित होने का कारण मनु को ही समझ लिया गया। जात-पाँत की बुराइयों का आधार मनु को समझा गया। इस प्रकार मनु को तिरस्कृत करने के अनेक कारण आ उपस्थित हुए। यद्यपि सच्ची बात यह थी कि जिन अविद्या आदि भ्रममूलक बुराइयों ने हिन्दूजाति पर आक्रमण किया, उन्होंने हिन्दू साहित्य और विशेषकर मनु पर भी आक्रमण किया है।

मनुस्मृति के क्षेपकों का दोष मनु के सिर नहीं हैं, अपितु इसके कारण वे अवैदिक प्रगतियाँ थीं, जिनका विष मनु में भी प्रविष्ट हो गया है।" (सार्वदेशिक मासिक : अगस्त १९४७ पृ० २५९-६०)।

परिशिष्ट-१०

मनु और मनुस्मृति पर आक्षेप : एक विचार

—डॉ० रामकृष्ण आर्य (वरुणमुनि वानप्रस्थी)

राजर्षि मनु वेदों के बाद सर्वप्रथम धर्म प्रवक्ता, मानव मात्र के पूर्वज राजधर्म और विधि (कानून) के सर्वप्रथम प्रणेता थे। उनके द्वारा रचित धर्मशास्त्र संसार का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ धर्मशास्त्र है, जिसे मनुस्मृति के नाम से जाना जाता है। इस मनुस्मृति में बिना किसी पक्षपात के मानवमात्र को उन्नति के समान अवसर प्रदान करनेवाली एक उत्तम वैज्ञानिक और अद्वितीय समाज-व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है, जिसे वर्ण-व्यवस्था कहा जाता है। जोकि मनुष्य मात्र के गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित है। मनु की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे जन्म के आधार पर किसी मनुष्य को उच्च या नीच नहीं मानते।

मनुस्मृति का वर्तमान स्वरूप

स्वायम्भुव मनु मनुस्मृति के प्रवक्ता हैं। प्रवक्ता इसलिए कि मनुस्मृति मूलतः प्रवचन है, जिसे मनु के प्रारम्भिक शिष्यों ने संकलित कर एक विधिवत् शास्त्र या ग्रन्थ का रूप दिया। मनुस्मृति में कुल १२ अध्याय और २६८५ श्लोक हैं। मनुस्मृति सहित प्राचीन ग्रन्थों का आज जो वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है, उसके अनुसार मनुस्मृति में १२१४ श्लोक मौलिक और १४७१ श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

भारत और विदेशों में मनुस्मृति की प्रतिष्ठा

वेद के बाद यदि किसी ग्रन्थ की भारत और भारत से बाहर विदेशों में सर्वत्र अत्यधिक प्रतिष्ठा है, तो वह ग्रन्थ मनुस्मृति है। विस्तारभय से हम उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। ऐसे विश्वप्रसिद्ध 'लागिवर' एवं समाज-व्यवस्था प्रणेता पर पता नहीं किस स्वार्थ के वशीभूत होकर आक्षेप और आरोप लगाये जा रहे हैं, जो चिन्तनीय हैं।

मनु और मनुस्मृति पर आक्षेप

मनु और मनुस्मृति पर आक्षेप तीन प्रकार से लगाये जा रहे हैं। (क) मनु ने जन्म पर आधारित जात-पाँत व्यवस्था का निर्माण किया। (ख) उस व्यवस्था में मनु ने शूद्रों, अर्थात् दलितों के लिए अमानवीय और पक्षपातपूर्ण विधान किये, जबकि सवर्णों, विशेष रूप से ब्राह्मणों को विशेषाधिकार दिये गये। इस प्रकार मनु शूद्र विरोधी थे। (ग) मनु नारी जाति के विरोधी थे। उन्होंने नारी को पुरुष के समान अधिकार ही नहीं दिये, अपितु नारी जाति की घोर निन्दा भी की है।

आक्षेपों पर विचार

(क) मनु ने जन्माधारित जात-पाँत व्यवस्था का निर्माण नहीं किया, अपितु गुण-कर्म-स्वभाव आधारित वर्ण-व्यवस्था का निर्माण किया जिसका मूल ऋ० १०/९०/११-१२, यजु:० ३१/१०-११ और अथर्व० १९/६/५-६ में पाया जाता है। मनु वेद को परम प्रमाण मानते हैं। इस वर्ण-व्यवस्था को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार समुदायों में व्यवस्थित किया गया है। **ब्राह्मण**—ज्ञान का आदान-प्रदान करनेवाला प्रधान व्यक्ति और उसका समुदाय। **क्षत्रिय**—समाज की रक्षा का भार उठानेवाला, वीरता गुण, प्रधान व्यक्ति और उसका समुदाय। **वैश्य**—कृषि, उद्योग, व्यापार, अर्थ धन, सम्पत्ति का अर्जन, वितरण करनेवाला प्रधान गुणवाला व्यक्ति और उसका समुदाय तथा **शूद्र**—जो पढ़ने लिखाने से भी पढ़-लिख नहीं सके ऐसा शारीरिक श्रम करनेवाला प्रधान व्यक्ति और उसका समुदाय मिलकर वर्ण व्यवस्था की संरचना करते हैं। (मनुस्मृति—१/३१, ८७-९१, १०-४५)। मनु ने अपनी मनुस्मृति के वर्णों के अतिरिक्त जन्माधारित जातियों, गोत्रों आदि का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। इतना ही नहीं मनु ने तो भोजनार्थ समय कुल, गोत्र पूछने और बतानेवाले को 'वमन करके खानेवाला' इस निंदित विशेषण से विशेषित किया है। (मनु० ३/१०९)।

जाति-व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था से उल्टी

जाति-व्यवस्था में जन्म से ऊँचे-नीचे को महत्त्व दिया है, गुण-कर्म और योग्यता को नहीं। ब्राह्मणादि के घर जन्म लेनेवाला

ब्राह्मणादि ही कहलाता है चाहे उसमें ब्राह्मणादि के गुण, कर्म, और योग्यता न हो तथा शूद्र के घर जन्म लेनेवाला शूद्र ही कहलाता है चाहे उसमें सम्पूर्ण गुण, कर्म, योग्यता ब्राह्मणादि के क्यों न हों।

मनु शूद्र अर्थात् दलित विरोधी नहीं थे

(ख) मनु शूद्र अर्थात् दलित विरोधी नहीं थे। विचार करें कि मनुस्मृति में शूद्रों की क्या स्थिति है?

आजकल की दलित पिछड़ी और जनजाति कही जानेवाली जातियों को मनु ने शूद्र नहीं कहा है, अपितु जो पढ़ने-पढ़ाने का पूर्ण अवसर देने के बाद भी न पढ़ सके और केवल शारीरिक श्रम से ही समाज की सेवा करे, वह शूद्र है। (मनु० १/९०)।

मनु प्रत्येक मनुष्य को समान शिक्षाध्ययन करने का समान अवसर देते हैं। जो अज्ञान, अन्याय, अभाव में से किसी एक भी विद्या को सीख लेता है, वही मनु का द्विज अर्थात् विद्या का द्वितीय जन्मवाला है। परन्तु जो अवसर मिलने के बाद भी शिक्षा ग्रहण न कर सके, अर्थात् द्विज न बन सके वह एक जाति जन्म (मनुष्य जाति में जन्म) में रहनेवाला शूद्र है। दीक्षित होकर अपने वर्णों के निर्धारित कर्मों को जो नहीं करता, वह शूद्र हो जाता है, और शूद्र कभी भी शिक्षा ग्रहण कर ब्राह्मणादि के गुण, कर्म, योग्यता प्राप्त कर लेता है, वह ब्राह्मणादि का वर्ण प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है। संस्कार में दीक्षित होकर ही द्विज बनता है (स्कन्दपुराण)। इस प्रकार मनुकृत शूद्रों की परिभाषा वर्तमान शूद्रों और दलितों पर लागू नहीं होती। (१०/४, ६५ आदि)।

(२) **शूद्र अस्पृश्य नहीं**—मनु ने शूद्रों के लिए उत्तम, उत्कृष्ट और शुचि जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है, अतः मनु की दृष्टि में शूद्र अस्पृश्य नहीं है। (मनु० ९/३३५) शूद्रों को द्विजाति वर्णों के घरों पर भोजन आदि कार्य करने का निर्देश दिया है। (मनु० १/९१, ९/३३४-३३५)। शूद्र, अतिथि और भृत्य (शूद्र) को पहले भोजन कराया जाए। (मनु० ३/११२, ११६)। क्या आज के वर्णरहित समाज में शूद्र नौकर को पहले भोजन कराया जाता है? इस प्रकार मनु शूद्र को निन्दित अथवा घृणित नहीं मानते थे।

(३) **शूद्र को सम्मान व्यवस्था में छूट**—मनु की सम्मान व्यवस्था में सम्मान गुण, योग्यता के अनुसार होकर विद्यावान् अधिक सम्मानीय होता है। पर वृद्ध शूद्र को सर्वप्रथम सम्मान देने का निर्देश दिया गया है। (मनु० २/१११, ११२, १३०, १३७)।

(४) **शूद्र को धर्म पालन की स्वतन्त्रता**—मनु ने शूद्रों को धार्मिक कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता दी है। (मनु० १०/१२६) इतना ही नहीं यह भी कहा है कि शूद्र से भी उत्तम धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए।

(५) **दण्ड-व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड**—मनु ने शूद्र को सबसे कम दण्ड, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण को उत्तरोत्तर अधिक दण्ड, परन्तु राजा को सबसे अधिक दण्ड देने का विधान किया है। (मनु० ८/३३७-३३८, ३३५, ३४७)।

(६) **शूद्र दास नहीं**—शूद्र दास, गुलाम अर्थात् बन्धुआ मजदूर नहीं है। सेवकों/भृत्यों को पूरा वेतन देने का आदेश दिया है और उनका अनावश्यक वेतन न काटा जाए, ऐसा निर्देश है। (७/१२५, १२६, ८/२१६)

(७) **शूद्र सवर्ण है**—मनु ने शूद्र सहित चारों वर्णों को सवर्ण माना है। चारों वर्णों से भिन्न असवर्ण है। (मनु० १०/४,४५) पर बाद का समाज शूद्र को असवर्ण कहने लग गया। उसी प्रकार मनु ने शिल्पी—कारीगर को वैश्य वर्ण में माना है, पर बाद में समाज इन्हें भी शूद्र कहने लगा (मनु० ३/६४, ९/३२९, १०/९९, १२०)। इस प्रकार मनु की व्यवस्थाएँ न्यायपूर्ण हैं। उन्होंने न शूद्र और न किसी और के साथ अन्याय और पक्षपात किया है।

(८) **मनु और डॉ० बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर**—आधुनिक संविधान निर्माता और राष्ट्र निर्माता तथा भूतपूर्व महामहिम राष्ट्रपति श्री वेंकटरमण के शब्दों में 'आधुनिक मनु' डॉ० भीमराव अम्बेडकर द्वारा मनुस्मृति का विरोध और उसे दलितों पर अत्याचार कराने की जिम्मेवार तथा जात-पाँत व्यवस्था की जननी मानने का सवाल है। जन्मना जात-पाँत, ऊँच-नीच, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं के कारण अपने जीवन में उन्होंने जिन उपेक्षाओं, असमानताओं, यातनाओं और अन्यायों को भोगा था, उस स्थिति में कोई भी

स्वाभिमानी शिक्षित वही करता जो उन्होंने किया। क्योंकि यह सत्य है कि उस समय तक मनुस्मृति का शोधपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन होकर उसमें समय-समय पर किये गये प्रक्षेपों पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ था। जिससे उन्हें प्रक्षिप्त और मौलिक श्लोकों में भेद करने का कोई स्रोत नहीं मिला, फिर भी उन्होंने मनु द्वारा प्रतिपादित गुण-कर्म-योग्यता आधारित वर्ण व्यवस्था और महर्षि दयानन्द और अन्यों के द्वारा उसकी की गई व्याख्या की प्रशंसा की है।

(ग) क्या मनु नारी जाति के विरोधी थे? मनुस्मृति के स्वयं के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि मनु नारी जाति के विरोधी नहीं थे। कतिपय प्रमाण प्रस्तुत हैं—जिस परिवार में नारियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता—दिव्य गुण, दिव्य सन्तान आदि प्राप्त होते हैं। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। (मनु० ३/५६)। नारियाँ घर का सौभाग्य, आदरणीया, घर का प्रकाश, घर की शोभा, लक्ष्मी, संचालिका, मालकिन, स्वर्ग और संसार यात्रा का आधार हैं। (मनु० ९/११, २६, २८, ५/१५०) स्त्रियों के आधीन सबका सुख है। उनके शोकाकुल रहने से कुल क्षय हो जाता है। (३/५५, ६२)। पति से पत्नी और पत्नी से पति सन्तुष्ट होने पर ही कल्याण सम्भव है। (९/१०१-१०२)। सन्तान उत्पत्ति के द्वारा घर का भाग्योदय करनेवाली गृह की आभा होती है। शोभा-लक्ष्मी और नारी में कोई अन्तर नहीं है। (९/२६) मनु सम्पूर्ण सृष्टि में वेद के बाद पहले संविधान निर्माता हैं। जिन्होंने पुत्र और पुत्री की समानता घोषित कर उसे वैधानिक रूप दिया। (९/१३०)। पुत्र-पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में समान अधिकार प्रदान किया। (९/१३१)। यदि कोई स्त्रियों के धन पर कब्जा कर लेता है तो वे चाहे बन्धु-बान्धव ही क्यों न हों, उन्हें चोर के सदृश दण्ड देने का विधान किया गया है। (९/२१२, ३/५२, ८/२, २९)। स्त्री के प्रति किये गये अपराधों में कठोरतम दण्ड का प्रावधान मनु ने किया है। (८/३२३, ९/२३२, ८/३५२, ४/१८०, ८/२७५, ९/४)। कन्याओं को अपना योग्य पति चुनने की स्वतन्त्रता, विधवा को पुनर्विवाह करने का अधिकार दिया है। साथ में दहेज निषेध करते हुए कहा गया है कि कन्याएँ भले ही ब्रह्मचारिणी रहकर कुँवारी रह जाएँ, परन्तु गुणहीन दुष्ट पुरुष से विवाह न करें। (९/९०-

११, १७६, ५६–६३, ३/५१–५४, ९/८९)। मनु ने नारियों को पुरुषों के पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों में सहभागी माना है। (९/११, २८, ९६, /४, ३/२८)। मनु ने सभी को यह निर्देश दिया है कि नारियों के लिए पहले रास्ता छोड़ दें, नव विवाहिता, कुमारी, रोगिणी, गर्भिणी, वृद्धा आदि स्त्रियों को पहले भोजन कराकर पति–पत्नी को साथ भोजन करना चाहिए। (२/१३८, ३/११४, ११६)। मनु नारियों को अमर्यादित स्वतन्त्रता देने के पक्षधर नहीं हैं तथा उनकी सुरक्षा करना पुरुषों का कर्त्तव्य मानते हैं। (५/१४९, ९/५–६) उपर्युक्त विश्लेषणपूर्वक प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि मनु स्त्री और शूद्र विरोधी नहीं है। वे न्यायपूर्ण हैं और पक्षपात रहित हैं।

मनुस्मृति में प्रक्षेप

मनु के वैदिक वर्ण–व्यवस्था गुण, कर्म, योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित श्लोक मौलिक और जन्माधारित जात–पाँत, पक्षपात विधायक सभी श्लोक प्रक्षिप्त हैं। मनु के समय जातियाँ नहीं बनी थीं। इसलिए उन्होंने जातियों की गिनती नहीं दर्शाई । यही कारण है कि वर्ण संस्कारों (वर्ण संकरों) से सम्बन्धित श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं। मनु की दण्ड–व्यवस्था एक जनरल कानून है, मौलिक है, इसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण कठोर दण्ड–व्यवस्था विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं। वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र विषयक श्लोक मौलिक, शेष जन्मना शूद्र निर्धारक छुआछूत, ऊँच–नीच अधिकारों का हरण और शोषण विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं। नारियों के सम्मान, समानता, स्वतन्त्रता और शिक्षा विषयक श्लोक मौलिक हैं, इसके विपरीत प्रक्षिप्त हैं।

उपसंहार

यह सत्य है कि आम लोग और अनेक परम्परावादी विद्वान्, सन्त, महात्मा आदि उसी प्रक्षिप्त श्लोकों सहित मनुस्मृति को आज भी प्रामाणिक मानकर जन्माधारित जाति–व्यवस्था ईश्वर द्वारा प्रदत्त स्वीकार कर उससे ग्रसित हैं। आज भी वे स्त्री और शूद्र को अपने बराबरी का दिल से अधिकार नहीं देना चाहते, परन्तु आर्यसमाज जो जन्माधारित जाति- प्रथा में तनिक भी विश्वास नहीं

करता और प्रारम्भ से ही दलितों का सच्चा हितैषी रहा है– प्रक्षिप्त श्लोकों रहित मनुस्मृति को ही प्रामाणिक मानता है और गुण, कर्म, योग्यता आधारित वर्ण–व्यवस्था का समर्थक है। यह बात पृथक् है कि आज वर्ण–व्यवस्था की पुन: स्थापना असम्भव-सी प्रतीत होती है, क्योंकि जात–पाँत के रहते वर्ण-व्यवस्था लागू नहीं हो सकती, इसलिए भले ही वर्णव्यवस्था की पुन: स्थापना न हो, परन्तु जात–पाँत टूटकर जात–पाँत रहित समाज बनना चाहिए। ताकि फिर किसी को वह गैर बराबरी और छुआछूत की यातना न भोगनी पड़े, जो इस देश के आधुनिक संविधान निर्माता और आधुनिक मनु, डॉ० अम्बेडकर और तथाकथित शूद्रातिशूद्रों और दलितों को भोगनी पड़ी थीं।

अन्त में हमारा निवेदन है कि प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर मनु और मनुस्मृति पर भ्रमवश मनमाने आरोप–प्रत्यारोप लगाना अनुचित है। प्राचीन और विशुद्ध मनुस्मृति ग्रन्थ स्वाध्याय करने योग्य है। पक्षपात और पूर्वाग्रह रहित होकर शोधपूर्वक मनुस्मृति का अध्ययन करेंगे, तो यह भ्रान्ति मिट जाएगी कि मनु जात–पाँत के जन्मदाता और दलित तथा नारी विराधी थे। मनु और मनुस्मृति के विरोध में लड़ाई बन्द होनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में हम सब मानवतावादी हैं।

वैदिक समाजवाद

–महर्षि दयानन्द सरस्वती

"पाठशालाओं में सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जाएँ, चाहे वह राजकुमार वा राजुकमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।" **–सत्यार्थप्रकाश**

प्रकाशक–श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास,
हिण्डौन सिटी (राज०) पिन–३२२ २३०,
संस्करण २००८, पृष्ठ ३७–३८

"माता, पिता, आचार्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिए।" **–पंचमहायज्ञविधि**

प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट, अनारकली, लाहौर,
संस्करण– आषाढ १९९६ वि०संवत्–पृष्ठ–५४

श्री संतराम बी०ए० और डॉ० अम्बेडकर





''भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या जाति व्यवस्था और जातिभेद की है। इस विषय में आर्यसमाज में सबसे अधिक साहित्य लिखनेवाले आर्यसमाज के एक सौ एक वर्षीय वयोवृद्ध लेखक श्री संतरामजी बी०ए० (१४ फरवरी १८८७–३१ मई १९८८) थे। आर्यसमाज के सम्पर्क के कारण बचपन से ही आपमें समाजसुधार की लगन और हिन्दी सेवा की धुन उत्पन्न हुई थी। इसी उद्देश्य से आपने नई तरुण पीढ़ी को सामाजिक क्रान्ति का पाठ पढ़ाने के लिए 'हमारा समाज', 'अन्तर्जातीय विवाह' आदि विविध सामाजिक विषयों से सम्बन्धित शताधिक पुस्तकें लिखी थीं। 'क्रान्ति' और 'युगान्तर' नामक पत्रों का प्रकाशन भी समाज सुधार के उद्देश्य से ही किया था। आपके जात-पात खण्डन विषयक लेखों में बड़ी उग्रता, सुधारक का जोश एवं ओजस्विता मिलती है। आप समाज में वैचारिक क्रान्ति लाने के लिए सतत लेखन करते रहे।''

आपको ही जात-पात-तोडक मण्डल का संस्थापक सभासद् और सर्वप्रथम मन्त्री होने का श्रेय प्राप्त है। आपने ही डॉ० अम्बेडकरजी को 'मण्डल' के वाॢषक अधिवेशन (१९३६) की अध्यक्षता के लिए निमन्त्रित किया था।

हिन्दी प्रचार, साहित्य-सेवा और समाज-सुधार का तिरङ्गा ध्वज लेकर आप सदा ही अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर रहे।

श्री संतराम अपनी आयु के १०१ वर्ष पार करके इस धरा धाम से वैसे ही विदा हुए हैं, जैसे कोई क्रिकेट का खिलाड़ी अपना शतक पूरा करने के पश्चात् मैदान से विदा होता है। ऐसी दीर्घायु उन व्यक्तियों के हिस्से में आती है जिनका जीवन आन्तरिक नैतिकता और सार्वजनिक उद्देश्य से परिपूर्ण होता है।

स्वभाषा के रूप में हिन्दी के द्वारा और स्वजाति के रूप में जात-पात तोड़कर सारे देश को एक ही भाषा और एक मानव जाति को अपनाने वाला बनाकर राष्ट्र की एकता के स्वप्न का यह साधक जिस प्रकार जीवन भर निष्काम कर्म करता रहा, वह अपने आप में एक उदाहरण है। आपने अपने एक लेख में यह स्पष्ट लिखा था कि "अपने पूर्वजों या महापुरुषों के गुण गान करने मात्र से कुछ अधिक लाभ नहीं होगा। लाभ तो तभी होगा, जब हम उनके दिये ज्ञान के अनुसार आचरण करेंगे।"



श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास की हितकारी प्रकाशन योजना

हम लम्बे समय से अनुभव करते रहे हैं कि पुस्तकों के पाठक कम होते जा रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें पुस्तकों का महँगा होना भी एक कारण है। वर्तमान में पुस्तकों के मूल्य और व्यक्ति द्वारा प्रतिदिन पढ़े जानेवाले पृष्ठों का हिसाब लगायें तो आम आदमी की आय का एक बड़ा हिस्सा इसमें व्यय हो जाये। ऐसी स्थिति में व्यक्ति पुस्तकों से दूर ही रहेगा। या फिर वह सस्ती पुस्तकें अथवा पत्रिकाएँ क्रय करेगा, जो छपती तो लाखों की संख्या में हैं, लेकिन प्रायः हित नहीं करती हैं। इस समस्या के निराकरण हेतु हमने एक हितकारी प्रकाशन योजना प्रारम्भ की है जिसके अन्तर्गत उत्तम कागज पर कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसैट पर छपाई करवाकर सुन्दर सज्जा में आकर्षक व टिकाऊ आवरण-जिल्द तैयार करवा कर लागत मूल्य पर पुस्तकें सदस्यों को उपलब्ध करवाई जाएँगी।

इस योजना का सदस्यता शुल्क दो सौ पचास रुपये है। यह प्रारम्भ में एक बार सदस्य को जमा कराने होते हैं। आप हमेशा इस योजना के सदस्य रहेंगे। योजना की सदस्यता समाप्त नहीं की जा सकेगी। आप इसे अपने स्थान पर किसी अन्य के नाम परिवर्तित करा सकते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत वर्ष में दो बार में चार सौ रुपये के लगभग की पुस्तकें प्रकाशित होंगी। इन पुस्तकों का लेना सदस्यों के लिए अनिवार्य होगा।

एक सदस्य को एक पुस्तक लागत मूल्य+डाक व्यय पर प्राप्त होगी। एक सदस्य कितनी ही प्रतियों का सदस्य बन सकता है। वह जितनी प्रतियों का सदस्य बनेगा उसे उतना ही सदस्यता शुल्क जमा कराना होगा तथा उतनी ही प्रतियाँ लेनी होंगी।

पुस्तकें प्रकाशित होने पर बिना सूचना के सदस्यों को पंजीकृत डाक व कूरियर द्वारा भिजवाई जाएँगी। पुस्तक प्राप्त होने पर बीस दिन के अन्दर पुस्तकों का मूल्य+डाक या कूरियर व्यय भिजवा सकेंगे। समय से राशि नहीं भिजवाने पर अगली पुस्तकें वी०पी० द्वारा भिजवाई जाएँगी।

पुस्तकें वापिस आने पर क्षतिपूर्ति सदस्यता शुल्क से की जाएगी व सदस्यता समाप्त समझी जाएगी। यदि शुल्क में कुछ राशि बचती है तो वह वापिस नहीं होगी। क्षतिपूर्ति की राशि जमा करवाकर सदस्यता पुनः प्रारम्भ की जा सकती है।

इस योजना के अन्तर्गत समय-समय पर अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें विशेष छूट के साथ उपलब्ध कराई जाएँगी, जिनका लेना सदस्य की इच्छा पर निर्भर करेगा।

आशा है लाभकारी योजना के आप स्वयं सदस्य बनकर अपने परिचितों को भी बनाकर विचार के इस प्रसार अभियान में हमारा उत्साहवर्धन करेंगे।